एक ओंकार (ੴ) सतिगुरु प्रसादि ॥

इतिहास गुरू खालसा (पंथ) अठाहरवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक

व

स्वन्त्रता का सिक्ख संग्राम

अथवा

सिक्ख इतिहास भाग द्वितीय

www.sikhworld.info
E-mail: info@sikhworld.info
&
jasbirsikhworldinfo@gmail.com

क्रांतिकारी जगद्‌गुरु नानक चेरीटेबल

द्वितीय – अंश (3)

लेखकः
जसबीर सिंघ
फोनः 0172 – 21696891
मो. 99881 – 60484

ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

सिक्ख मिसले (राजबाड़े)

सिक्ख इतिहास, भाग–दूसरा

लेखक : स. जसबीर सिंघ

क्रांतिकारी गुरु नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़
Website : www.sikhworld.info

विषय – सूची

क्रमसंख्या	शीर्षक	पृष्ठसंख्या
1.	सिक्ख मिसले	
2.	फैजलपुरिया का सिंहपुरिया मिसल	
3.	आहलूवालिया मिसल	
4.	रामगढ़िया मिसल	
5.	भंगी मिसल	
6.	शुक्रचकिया मिसल	
7.	कन्हैया मिसल	
8.	फुल्कियां मिसल	
9.	नकई मिसल	
10.	डल्लेवालिया मिसल	
11.	शहीद सिंह अथवा निहंग मिसल	
12.	निशानवालिया मिसल	
13.	करोड़ सिंहिया मिसल	
14.	सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया, जाट, रूहेले और बादशाह आलम	
15.	जस्सा सिंह आहलूवालिया का पत्र शाह आलम के नाम	
16.	जाबिता खान और सिक्ख	
17.	जस्सा सिंह आहलूवालिया और जाट	
18.	करतारपुर के सोढ़ियों की सिक्ख पंथ में पुनर्स्थापना	
19.	रामगढ़ियों से मतभेद	
20.	दल खालसा के अध्यक्ष सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी का देहान्त	
21.	एकमात्र बुड्ढा सरदार, जत्थेदार श्याम सिंह	
22.	गुरमता व केन्द्रीय सिक्ख संगठन	
23.	सिक्खों की सांकेतिक भाषा	

सिक्ख मिसले

13 अप्रैल, 1753 ईस्वी को वैशाखी के दिन सिक्खों के 65 दलों को एक करके एक ही नाम में बदल दिया गया और इस दल का नाम रखा गया 'दल खालसा'। अब नवाब कपूर सिंह जो उस समय काफी वृद्ध हो चुके थे, भविष्य में सिक्खों के नेतृत्त्व से अलग हो गये और उनके स्थान पर सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया नेता नियुक्त हुए। अगले बीस वर्षो में परिस्थिति के अनुसार दल खालसा को आवश्यकता अनुसार ग्यारह – बारह बड़े दलों में बाँट दिया गया। प्रत्येक दल का अपना अपना सरदार, अपना अपना निशान और अपनी ही उपाधियाँ होती थीं किन्तु शक्ति में वे सब एक जैसे नहीं थे। कुछ समय के बाद ये बारह जत्थे 'मिसले' कहलाने लगी। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम में वह कौशल दिखाये कि मुगलों और अफगानों को पँजाब से बाहर निकाल कर 1767 से 1799 ईस्वी तक समूचे पँजाब में सिक्ख राज्य स्थापित कर लिया। यहाँ यह उल्लेख करना अरोचक न होगा कि ये बारह मिसले किसी खास योजनानुसार जानबूझ कर अथवा एक ही समय में नहीं बनाई गई थी अपितु आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार ये स्वयंमेव बन गई।

आरम्भ में ये ग्यारह जत्थे ही कहलाते रहे परन्तु धीरे धीरे जत्था शब्द के स्थान पर मिसल शब्द का प्रयोग होने लगा। हर जत्थे की एक मिसल अर्थात फाइल, अमृतसर (केन्द्रीय दफ्तर) में हुआ करती थी। उस मिसल में हर जत्थे के जत्थेदारों और जवानों द्वारा लड़ी गई लड़ाईयाँ, यौद्धिक गतिविधियाँ, प्राप्त यौद्धिक विजय तथा युद्धों में मारे गये सैनिकों का रिकार्ड (हिसाब – किताब) रखा जाता था। सिपाही अथवा जत्थेदार को जो कुछ प्राप्त होता था, वह अपनी मिसल में दर्ज करवा कर खजाने में जमा करवा दिया करता था। हर कोई रकम जमा करवाने वाला यह ही कहता था कि मेरा हिसाब उस विशेष नाम की मिसल में लिख लो। इस प्रकार जत्था शब्द तो हट गया और मिसल शब्द का प्रयोग प्रचलन में आ गया। अब, जब कोई जत्थे का सिपाही दूसरे जत्थे के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता तो वह यही पूछता कि तू किस मिसल से सम्बन्धित है और कौन सी मिसल के सिपाही कहाँ हैं, इत्यादि।

(सन 1697 से 1753 ई.) नवाब कपूर सिंह जी, जब मुग़ल शासकों ने सिक्खों से सन्धि करने के विचार से नवाबी की उपाधि का सम्मान भेजा तो यह पद इस विनम्र सरदार को मिला।

'मिसल' एक अरबी शब्द है, जिसके अर्थ हैं बराबर अथवा एक ही जैसा इसी शब्द को फारसी भाषा में एक दस्तावेज अथवा फाईल के अर्थों में प्रयोग करते हैं। इन मिसलों में एक बड़ा गुण यह था कि इन ग्यारह – बारह दलों के सरदार दूसरे जत्थों के सरदारों के समान समझे जाते थे। अभिप्राय यह कि सभी सिक्ख चाहे वे नेता थे अथवा साधारण सदस्य, सब आपस में समान समझे जाते थे। जहाँ तक जाति का सम्बन्ध है, सभी सिक्ख आपस में समान होते थे, इसलिए युद्ध क्षेत्रों, पँचायती सभाओं और सामाजिक जीवन में सभी सिक्ख अपने सरदारों के समान समझे जाते थे परन्तु युद्ध के अवसर पर वे अपने अपने नेताओं का पूरी तरह से आज्ञा पालन भी करते थे। हाँ, शान्ति के समय उनके लिए अपने सरदारों की आज्ञा को पूरी तरह से पालन करना आवश्यक नहीं होता था।

मिसलें देखने को चाहे अलग अलग हो गई थी, परन्तु वास्तव में एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई थी। हर मिसल का प्रभाव अथवा अधिकार क्षेत्र निश्चित कर दिया था किन्तु सामूहिक विपत्ति के समय ये मिसलें एक दूसरे के साथ मिल कर, एक समान होकर शत्रु से जूझती थी । दल खालसा के नेतृत्त्व के नीचे वे एक दूसरे से अलग होने की सोच ही नहीं सकते थे । वह जो धन अथवा माल विभिन्न स्रोतों से लाते थे, एक जगह पर जमा करवाते और मिल बाँट कर खाते । किसी भी मिसल में निजी कब्जे वाले माल पर खुदगर्जी नहीं थी । वैशाखी तथा दीवाली के समय जब वे अमृतसर में एकत्रित होते तो अपनी अलग अलग मिसलों के झंडों के नीचे नहीं, बल्कि दल खालसा एक छत्र छाया में एकत्रित होते और अपने आप को सरबत खालसा कहते । वे पाँच प्यारे चुनते और गुरमता करते । 1748 ईस्वी के पश्चात् उन्होंने कई एक आवश्यक गुरमते भी पारित किये । सामूहिक बातें इज़लास (दीवान) में ही करते । अब्दाली के आक्रमण, मीर मन्नू की मदद पर शाहनवाज खान के संग बर्ताव, उनके लिए यही सामूहिक बातें होती । ऐसा करने से मिसलों के अलग अलग होने पर भी सामूहिक धड़कन बनी रहती थी । इसमें कोई शक नहीं कि मिसलों के जत्थेदार की राय अपना अलग प्रभाव रखती थी, परन्तु प्रत्येक सिपाही को अपनी राय देने तथा खुले तौर पर विचार प्रकट का अधिकार प्राप्त था ।

दूसरा मिसल में कोई ऊँच या नीच का भेद – भाव नहीं था । मनसबदार की तरह ग्रेड निश्चित नहीं थे और न ही आज की तरह रैंक (रूत्बे) ही मिले हुए थे । सारे एक समान थे, जो बराबर के अधि कार रखते थे । एक जत्थेदार सिपाही का रूतबा रखता था और एक सिपाही एक जत्थेदार का । वे एक समान अर्थात पहला स्थान रखते थे ।

(सन 1718 से 1783 ई.) सुलतान – उल – कौम, सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया को नवाब कपूर सिंह जी ने दल खालसा का जत्थेदार नियुक्त किया, उन्होंने भी पंथ का ऐसा नेतृत्त्व किया कि बड़े घल्लूघारियों में से विजयी होकर पंथ को पंजाब का स्वामी बना दिया।

जत्थेदार की मर्जी कोई आखरी मर्जी नहीं होती थी । हर कोई सिपाही अपनी राय जत्थेदार तक पहुँचा सकता था । उस समय के प्रत्यक्षदर्शी मौलवी वली औला सद्दिकी ने लिखा है कि सिक्ख मिसलों का हर सदस्य आजाद था । हर सरदार मालिक भी था और सेवक भी, हाकिम भी और मातहत भी । एकान्त में खुदा का भक्त फकीर तथा पंथ में मिल कर दुश्मन का लहू पीने वाला मौत का फरिशता होता था ।

तीसरा सिपाही को अधिकार था कि वह एक मिसल में से निकल कर किसी दूसरे मिसल में शामिल हो सकता था । यदि कोई सिपाही एक मिसल को त्याग कर दूसरी मिसल में जाता तो इस बात को बुरा नहीं माना जाता था । इससे यह प्रकट होता है कि सब मिसलों का लक्ष्य एक ही था । यदि कोई सिक्ख किसी दूसरी मिसल में जाने की इच्छा प्रकट करता तो उसका जत्थेदार उसे खुशी से वहाँ भेज देता । इसी प्रकार दूसरा जत्थेदार उसे खुशी से स्वीकार कर लेता । इस छूट का एक लाभ यह भी था कि हर सिपाही का व्यक्तित्त्व कायम था । फिर जत्थेदार इस प्रयास में रहते थे कि हर सिपाही उनसे सन्तुष्ट रहे । सिपाही के खुश रहने की सूरत में उसकी मिसल छोड़ कर जाने का कोई कारण ही नहीं रह जाता था ।

फैजलपुरिया का सिंहपुरिया मिसल

सर्वप्रथम फैजलपुरिया मिसल की उत्पत्ति हुई, जिसका नेता नवाब कपूर सिंह जी थे । नवाब

कपूर सिंह ने फैजलपुरिया गाँव को अपने अधिकार में कर लिया और उसका नाम सिंहपुर रखा, जिसके कारण इस मिसल का नाम सिंहपुरिया मिसल प्रसिद्ध हो गया।

नवाब कपूर सिंह एक जाट किसान दिलीप सिंह के लड़के थे। जो फैजलपुर गाँव का रहने वाले थे। उन्होंने भाई मनी सिंह जी से, जो दरबार साहिब, अमृतसर के सबसे बड़े ग्रन्थी थे, से अमृत के पाहुल ग्रहण किया। सिक्ख जगद् में उनका बहुत मान सतिकार था। वह सन् 1733 ईस्वी से 1748 ईस्वी तक सिक्खों के धार्मिक और राजनीतिक नेता बने रहे। जब कभी कोई अवसर आ पड़ता, तब नवाब कपूर सिंह जी ही सबसे पहले कार्यक्षेत्र में उतरते। कहा जाता है कि विभिन्न लड़ाइयों में भाग लेने के कारण उनके शरीर पर 43 घावों के निशान थे। वे जितना बहादुर सेनानायक थे, उतने ही धर्म प्रचारक भी थे। जिसने कई छोटी छोटी जाति वाले लोगों को काफी सँख्या में सिंह सजाए (सिक्ख बनाया)। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया और सरदार आला सिंह (महाराजा पटियाला) ने नवाब कपूर सिंह जी से अमृत का पाहुल प्राप्त की थी।

जब मुगल साम्राज्य पँजाब में सिक्खों से प्रतिदिन के टकराव की कार्यवाहियों से तंग आ गया तो लाहौर के राज्यपाल जक्रिया खान ने दिल्ली में बैठे सम्राट को सिक्खों से समझौता करने के लिए लिखा। अतः सम्राट की तरफ से सिक्ख नेता सरदार कपूर सिंह को 'नवाब' की उपाधि के साथ सम्मानित करके एक लाख रूपये की जागीर दे दी गई। यह घटना 1733 ईस्वी की है। नवाब कपूर सिंह जी 1748 ईस्वी तक समस्त सिक्खों के राजनैतिक नेता बने रहे और वह सफलतापूर्वक सिक्खों की समस्याओं को सुलझाने में सफल हुए। अन्त में जब वह काफी वृद्ध हो गये तब उन्होंने अपने उत्तराधिकारी का चयन करके अपने स्थान पर सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया को दल खालसा का नेतृत्त्व सौंप दिया। नवाब कपूर सिंह जी सिक्खों की सैनिक समस्याओं के अतिरिक्त धार्मिक और सामाजिक समस्याओं का भी समाधान करते रहते थे। आप सन् 1753 ईस्वी में परलोक सिधार गये। नवाब साहिब ने ठीक उस समय सिक्खों का नेतृत्त्व किया जिस समय सिक्खों के विरूद्ध मुगल साम्राज्य की ओर से अत्याचार और हिंसा की नीति जोरों पर थी परन्तु उन्होंने अपने अमूल्य नेतृत्त्व से सिक्खों को बार बार विनाश से बचाया। उनकी मृत्यु पर उनके भतीजे स० खुशहाल सिंह को सिंहपुरिया मिसल का उसका उत्तराधिकारी बनाया गया।

अपने चाचा की भान्ति खुशहाल सिंह भी एक उच्च कोटि का सेनानायक थे जिन्होंने अपने जीवन में काफी विजयें प्राप्त की। 1806 में खुशहाल सिंह की मृत्यु पर उसका बड़ा पुत्र बुद्ध सिंह उसके स्थान पर उत्तराधिकारी बन गये। इस मिसल का राज्य सतलुज नदी के दोनों ओर के प्रदेशों पर था, जिनमें जालन्धर और पट्टी के प्रदेश भी सम्मिलित थे। नवाब कपूर सिंह के समय इस मिसल के पास अढ़ाई हजार से तीन हजार तक सैनिकों की फौज थी। चाहे वह मिसल इतनी शक्तिशाली न थी फिर भी नवाब कपूर सिंह और खुशहाल सिंह के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण उनके काल में इस मिसल का अन्य मिसलों पर बहुत जोर और दबदबा था। अन्त में महाराजा रणजीत सिंह ने सन् 1816 ईस्वी में इस मिसल के प्रदेश को अपने अधिकार में ले लिया।

आहलूवालिया मिसल

फैजलपुरी मिसल के पश्चात् आम सिक्खों में सम्मानित होने वाली यदि कोई मिसल थी तो आहलूवालिया मिसल थी। इस मिसल का इतिहास में उच्च स्थान रहा है और इसे सम्मान व श्रद्धा से

देखा जाता था । इस मिसल के संस्थापक तथा नेता जत्थेदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ही थे । जैसे जवाब कपूर सिंह ने अति कष्टों के समय, छोटे घल्लुघारे की विपत्ति के समय पर अगुवाई करके पंथ को चढ़दी कला में रखा और निराशा को समीप नहीं आने दिया, उसी प्रकार सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ने अब्दाली के आक्रमणों, मीर मन्नू की सख्ती, अदीना बेग की चालाकी, मरहट्टों की हठधर्मी और फिर बड़े घल्लुघारे के समय योग्य अगुवाई करके, पंथ को पँजाब पर राज करने योग्य बनाया । कौम ने भी अपना सम्मान तथा श्रद्धा दर्शाने के लिए सरदार जस्सा सिंह जी को 'सुलतानुकुल कौम' का खिताब दिया और लाहौर का पातिशाह बनाया । फिर जब हरिमन्दिर साहिब की दोबारा आधारशिला रखने की बात चली तो पंथ ने संयुक्त निर्णय करके नींव पत्थर सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया से रखवाने के लिए उनसे विनती की । ये दो घटनाएं सिक्खों का उनके प्रति सम्मान की साक्षी दर्शाने के लिए काफी है । नवाब कपूर सिंह जैसे सुयोग्य नेता ने जब दल खालसा का नेतृत्त्व इनके हाथों सौंप दिया तो यह निर्णय न केवल उनका बुद्धिमतापूर्ण था, बल्कि नवाब कपूर सिंह जी की दूरदृष्टि का भी चमत्कार था । 1748 ईस्वी से लेकर 1767 ईस्वी तक पंथ को कई कठिनाइयों, समस्याओं तथा दुश्मनों का सामना करना पड़ा परन्तु यह सरदार जस्सा सिंह की अगुवाई का ही कमाल था कि उन्होंने पंथ को अन्त तक विजयी बनाये रखा ।

सरदार जस्सा सिंह के पिता – पितामा गाँव आहलू के निवासी थे । सरदार जस्सा सिंह के ननिहाल भी आहलू गाँव के ही थे । आपके मामा श्री भाग मल जी सिक्खों की चढ़दी कला देखकर सिंह सज गये । उन्होंने अपना सारा घर बाहर व सामान बेचकर घोड़ा खरीदा और सरदार नवाब कपूर सिंह जी के जत्थे (मिसल) में सम्मिलित हो गये । अमृत पान करने पर उनका नाम भाग सिंह रख दिया गया । वह उन्नति करते करते एक दिन स्वतन्त्र रूप में अपना जत्था बनाने में सफल हो गये परन्तु भाग सिंह जी स्वयं को सरदार कपूर सिंह जी के उप – जत्थे के रूप में ही मान्यता दिलवाते थे ।

एक दिन सरदार कपूर सिंह जी सरदार भाग सिंह के घर गये । वहाँ पर कपूर सिंह जी को भाग सिंह की विधवा बहन मिली, जिसने अमृतपान किया हुआ था । वह रबाब से गुरूवाणी बहुत सुरीले स्वर में गायन करती थी । नवाब कपूर सिंह जी ने जब उनका कीर्तन सुना तो बहुत प्रशंसा प्रकट की, तभी आप जी ने पूछा कि बहन जी की कोई सन्तान भी है तो उत्तर में सरदारी भाग सिंह जी ने बताया कि एक पुत्र है जो माता सुन्दर कौर जी के पास दिल्ली में रह रहा था, अभी कुछ दिन हुए वापिस आया है । यह सुपुत्र सरदार जस्सा सिंह जी ही थे । नवाब कपूर सिंह ने बालक जस्सा सिंह के प्रतिभाशाली व्यक्तित्त्व को देखकर उसी समय भविष्यवाणी कर दी कि यह बालक, समय आयेगा, जब बहुत बड़ा शूरवीर योद्धा बनकर कौम का मार्गदर्शन करेगा । यह बात सुनकर बुद्धिमती माँ ने जस्सा सिंह की बाँह नवाब कपूर सिंह को पकड़ा दी । थोड़े से समय पश्चात् सरदार जस्सासिंह का नाम अपने मामा भाग सिंह से भी बढ़ गया । जब सरदार भाग सिंह

सरदार जस्सा सिंघ रामगड़िया (1723 – 1803) यह सरदार साहिब इच्छोगिल क्षेत्र का निवासी था अतः इन्हें इच्छोगिलिया नाम ने जाना जाता था परन्तु इन्होंने राम रोहणी दुर्ग का पुनः निमार्ण किया था अतः बाद में इन्हें खालसा पंथ रामगढ़िया उपाधि से जानने लगे थे । इन्होंने अहिम्मद शाह अब्दाली को पराजित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी ।

का निधन हो गया तो उनके जत्थे (मिसल) की जिम्मेवारी जस्सा सिंह पर आ पड़ी, क्योंकि सरदार भाग सिंह निःसंतान थे, इसलिए इनकी मिसल का नाम भी आहलूवालिया प्रसिद्ध हो गया। इस मिसल का प्रभाव तथा रणक्षेत्र भी निश्चित था। मिसल का मुख्यालय जालंधर (दुआबा) में था और प्रभाव क्षेत्र भी वहीं आसपास का क्षेत्र ही था। इस मिसल के अधिकार क्षेत्र में व्यास नदी की इस ओर आहलू सरिअला, सिलंवर, भूपल, गगरवाल और उस पार तलवंडी तथा सुलतानपुर इत्यादि क्षेत्र थे। इसके अतिरिक्त राय इब्राहिम कपूरथला वाले से खिराज भी लेते थे। सतलुज पार भी ईसा खान तथा जगरांव पर इस मिसल का प्रभाव था। सरदार जस्सा सिंह स्वयँ चाहे मिसल के अग्रणी थे, परन्तु उनका दृष्टिकोण कभी भी सीमित तथा निजी मिसल वाला नहीं रहा। वह अन्तिम समय तक समूचे पंथक हित के लिए सोचते रहे। इस मिसल का भी सिक्ख इतिहास में उच्च स्थान रहा है। यदि फैजलपुरिया मिसल, दुःखड़े दूर करने में आगे थी तो यह मिसल भी मुकाबले में संघर्ष करने में किसी से कम नहीं थी। अदीना बेग अपने समय का एक शातिर नवाब था, उसने मरते दम तक जालंधर की अजारदारी न छोड़ी। इस मिसल ने अदीना बेग के इरादों पर रोक लगाए रखी, बिल्कुल अदीना बेग की नाक के नीचे प्रभाव क्षेत्र रखना तथा अधीनता को स्वीकार न करना, इस मिसल के हिस्से ही आया। अदीना बेग ने कई बार कोशिश की भी, पर सरदार जस्सा सिंह का करारा उत्तर सुनकर वह चुप हो गया। इस मिसल की शक्ति काफी समय तक जोरों पर रही। अदीना बेग ने सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया की इस मिसल से टकराना चाहा परन्तु सरदार रामगढ़िया ऐसा करने के लिए तैयार न हुए। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया के होते हुए कोई मिसल या उनके जत्थेदार आज्ञा उल्लंघन नहीं करना चाहता था। लाहौर के कब्जे के समय भी पातिशाह इनको ही बनाया गया। सन् 1767 ईस्वी के उपरान्त इस मिसल ने कपूरथला तथा जालंधर दुआबा के कई क्षेत्रों पर अपना नियन्त्रण कर लिया था।

सरदार जस्सासिंह जी एक युद्ध में एक गम्भीर घाव के कारण स्वस्थ होने पर भी बड़े युद्धों में भाग लेने के लिए अपने को अयोग्य अनुभव कर रहे थे, इसके साथ ही उनकी आयु भी इसके लिए उन्हें आज्ञा नहीं दे रही थी। वह अपने ऊँचे रूतबे के कारण भी मिसलों की आपसी लड़ाइयों में भाग लेना उचित नहीं समझते थे। अतः अधिकांश समय वह तटस्थ बने रहे। सन् 1783 इस्वी में आप का निधन हो गया।

सरदार जस्सा सिंह के देहान्त के पश्चात् इस मिसल की जत्थेदारी सरदार भाग सिंह, जो आपके भतीजे थे, के हाथ आई। वह कमजोर अधिकारी थे। वह अपना प्रभाव तथा अधिकार क्षेत्र बढ़ाने में सफल न हुए बल्कि रामगढ़िया मिसल से हार गये। भाग सिंह के पश्चात् फतेह सिंह के संग सरदार रणजीत सिंह ने पगड़ी बदल ली और इस मिसल को अपनी ओर कर लिया। (यह कहा जाता है कि यदि सरदार फतेह सिंह स्वयं हिम्मत से काम लेते तो वे स्वयं पँजाब के महाराजा बन सकते थे परन्तु उनके अन्दर आगे बढ़कर जोखिम लेने की शक्ति नहीं थी। बुद्धिमता में इनके मुकाबले का कोई मिसलदार नहीं था। सरदार रणजीत सिंह ने उनकी अक्लमंदी का बहुत लाभ उठाया। सन् 1806 ईस्वी में फतेह सिंह ने महाराजा रणजीत सिंह की तरफ से लार्ड लेक के साथ मैत्री संधि की। आप महाराजा रणजीत सिंह की भान्ति हर मुहिम पर स्वयँ आगे बढ़कर हिस्सा लेते रहे। सन् 1831 ईस्वी में आपका देहावसान हो गया।

रामगढ़िया मिसल

रामगढ़िया मिसल का संस्थापक सरदार जस्सा सिंह इच्छोगिलिया था । जस्सा सिंह ने राम रोहणी के दुर्ग को सिक्खों से लेकर उसकी मुरम्मत की और उसका नाम बदल कर रामगढ़ रखा, इसलिए इस मिसल का नाम रामगढ़िया मिसल पड़ गया । यहाँ यह लिखना अनिवार्य होगा कि रामगढ़िया कोई जाति नहीं ।

इस मिसल के पास अमृतसर के उत्तर में रियाड़की का प्रदेश था । कुछ भाग जालन्धर दोआबा का भी इस मिसल के पास था। इसके अतिरिक्त बटाला और कलानौर के प्रदेश भी उनके पास थे । इस मिसल की सैनिक शक्ति तीन हजार घुड़सवारों की थी । इस मिसल के संस्थापक सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया अथवा इच्छोगिलिया का जीवन वृतान्त इस प्रकार है ।

सरदार जस्सा सिंह का जन्म ज्ञानी भगवान सिंह के घर सन् 1723 ईस्वी में हुआ । आपका गाँव इच्छोगिलिया था । अत: आपकी संतानों को इच्छोगिलिया नाम से जाना जाता था परन्तु जब जस्सा सिंह ने रामरोहणी का पुन: निर्माण करवाया तो वह सिक्खों में रामगढ़िया नाम से पहचाने जाने लगे ताकि दूसरे सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया से उनकी भिन्नता प्रकट कर सकें ।

युवा होकर जस्सा सिंह रामगढ़िया ने अपने लिए सैनिक व्यवसाय चुन लिया और थोड़े ही समय में वह अपनी वीरता और निर्भीकता के कारण सिक्खों में एक योग्य सेनानायक प्रसिद्ध हो गये । उस समय खान बहादुर जक्रिया खान लाहौर का राज्यपाल था, जिसने 1733 ईस्वी तक सिक्खों के विरूद्ध हिंसा की नीति अपना रखी थी किन्तु सिक्खों की शक्ति के आगे जब वह उनसे समझौता करने पर विवश हो गया तब जालन्धर के फौजदार अदीना बेग ने सिक्खों की एक सेना तैयार करनी चाही तो जस्सा सिंह रामगढ़िया उसकी नौकरी में चला गया । इसी बीच सिक्खों ने जस्सा सिंह रामगढ़िया को सिक्ख बिरादरी से निष्कासित कर दिया । पँजाब का नया राज्यपाल मीर मन्नू सिक्खों की शक्ति को समाप्त करना चाहता था, इसलिए जब उसने अदीना बेग को सिक्खों को जीतने के लिए भेजा तो उसके साथ जस्सा सिंह रामगढ़िया भी था । अब उनकी सम्मिलित सेनाओं ने सिक्खों के अमृतसर स्थित किले राम रोहणी को घेर लिया । इस घेरे में सिक्खों के लगभग दो सौ व्यक्ति मारे गये और तीन सौ किले में रह गये ।

किले के अन्दर सुरक्षित सिक्खों के सैनिक नारों की आवाज़ सुनकर सरदार रामगढ़िया की धार्मिक भावनाएं भड़क उठी और उनके हृदय में अपने प्रति बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई । उसने एक पत्र लिखकर, जिसमें उसने दल खालसा (पंथ) से क्षमा याचना की और दुर्ग में सुरक्षित सिक्खों के साथ हो कर मुगलों के विरूद्ध लड़ने की इच्छा प्रकट की । यह संदेश तीर द्वारा किले के अन्दर फैंका । पंथ ने उसे क्षमा कर दिया और उसे किले में प्रविष्ट होने की आज्ञा दे दी गई । इस प्रकार जस्सा सिंह रामगढ़िया अपने साथियों सहित अदीना बेग की सेना से निकल कर किले के भीतर प्रविष्ट हो गया । उसे और उसकी सेना को देखकर अन्दर के सिक्खों का साहस दुगुना हो गया । अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के कारण मीर मन्नू ने विवशता में राम रोण्ही के किले का घेराव समाप्त कर दिया और वहाँ से सेना हटा कर चनाब नदी के तट पर सेना तैनात कर दी ।

ज्यों ही मीर मन्नू की मृत्यु के बाद पँजाब में अशान्ति फैली, जस्सा सिंह रामगढ़िया ने अपनी शक्ति और अपने प्रदेश का विस्तार करना शुरू कर दिया । उसने अमृतसर के उत्तर के क्षेत्र (रियाड़की)

को अपने अधिकार में कर लिया तथाजालन्धर दोआब के बहुत से प्रदेश पर भी अपना कब्जा जमा लिया । किन्तु रामगढ़िया की बढ़ती हुई शक्ति और मेलजोल को देखकर अन्य मिसलों के सरदार उन्हें ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगे । अन्त में जस्सा सिंह आहलूवालिया, जय सिंह कन्हैया, चढ़त सिंह सुक्रचकिया और हरि सिंह भंगी एक सम्मिलित गुट बनाकर जस्सा सिंह रामगढ़िया पर टूट पड़े । जस्सा सिंह रामगढ़िया पराजित होकर 1777 में सतलुज नदी के दक्षिण की ओर भाग जाने पर विवश हुआ । इससे एक बात का परिणाम निकलता है कि जस्सा सिंह रामगढ़िया का बल उस समय काफी बढ़ चुका था और किसी एक सरदार के लिए अकेला उसे पराजित करना कठिन बात थी ।

पराजित होकर भाग जाने के बाद जस्सा सिंह रामगढ़िया पँजाब के मालवा प्रदेश की ओर चला गया, जहाँ उसने पटियाला के राजा अमर सिंह से सहायता प्राप्त की । इस सहायता से उसने हिसार में सिरसा के आसपास का कुछ प्रदेश जीत लिया और उस प्रदेश को केन्द्र बनाकर उसने दिल्ली तक के प्रदेशों पर मार करना आरम्भ कर दिया । जहाँ तक कि वह एक बार दिल्ली नगर में प्रविष्ट होकर मुगलों के महलों से एक अनेक रँगों वाली पत्थर की शिला उड़ा कर ले आया । फिर उसने मेरठ पर भी आक्रमण किया और वहाँ के मुस्लिम फौजदार से काफी धन टैक्स के रूप में प्राप्त किया । हिसार के मुस्लिम फौजदार ने दो हिन्दू लड़कियों का सतित्त्व भंग किया था, उसे दण्ड दिया ।

जस्सा सिंह आहलूवालिया 1783 ईस्वी में परलोक सिधार गये । तब जस्सा सिंह रामगढ़िया ने उनकी मृत्यु से लाभ उठाया और मध्य पँजाब में आकर वह अपने पुराने प्रदेश को वापिस लेने की कोशिश करने लगे । थोड़े ही समय में उसने रियाड़की और जालन्धर दोआबा का बहुत सा प्रदेश फिर अपने अधिकार में कर लिया । उन्होंने श्री हरिगोबिन्दपुर को अपनी राजधानी बनाया और कलानौर कादियान, घुमन, दीनानगर तथा दोआब के कुछ प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया । उन दिनों दूसरी तरफ महाराजा रणजीत सिंह भी पँजाब पर अधिकार करने की चिन्ता में थे । वह लाहौर पर 1799 ईस्वी में अधिकार कर चुके थे । रणजीत सिंह की बढ़ती हुई शक्ति को समाप्त करने के लिए जस्सा सिंह रामगढ़िया गुलाब सिंह भंगी और कसूर के नवाब निजामुद्दीन ने सम्मिलित मोर्चा बनाकर महाराजा रणजीत सिंह का सामना भसीन नामक स्थान पर सन् 1800 ईस्वी में किया, परन्तु उन सब को पराजय का मुँह देखना पड़ा ।

जस्सा सिंह रामगढ़िया का 1803 ईस्वी में देहान्त हो गया । उनकी मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र जोध सिंह उनका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। महाराजा रणजीत सिंह जी ने जोध सिंह रामगढ़िया से मित्रता स्थापित कर ली और जब तक वह जीवित रहे, रणजीत सिंह ने उनके प्रदेश पर कोई आक्रमण नहीं किया परन्तु 1814 ईस्वी में जोध सिंह की मृत्यु हो जाने पर महाराजा रणजीत सिंह ने रामगढ़िया मिसल के सभी प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया और उसके उत्तराधिकारी को एक अच्छी जागीर देकर चुप करा दिया ।

भंगी मिसल

भंगी मिसल का संस्थापक सरदार हरि सिंह जी थे। इस मिसल के पूर्वज सरदार छज्जा सिंह जी ने अपने क्षेत्र के जाटों को एकत्रित करके सभी को सिक्ख बनने के लिए प्रेरित किया और एक अलग से जत्था बनाकर दुष्ट मुगलों के अत्याचारों का सामना करने लगे । आपके बाद आपके भाई भीम सिंह ने इस मिसल का नेतृत्त्व सम्भाला । भाई भीम सिंह को सरदार छज्जा सिंह जी ने अमृत धारण करवा

कर सिंह सजाया था । अमृतपान करने के उपरान्त भाई भीम सिंह ने काफी नाम कमाया । इस जत्थे ने नादर शाह से भारतीय महिलाओं को छुड़ाने में सक्रिय भाग लिया और नादर शाह की लूट के माल को भी हथिया लिया । भीम सिंह के उपरान्त इस जत्थे की जत्थेदारी सरदार हरी सिंह के पास आ गई । सरदार हरी सिंह भीम सिंह के भतीजे थे और उन्होंने उनको अपना धर्मपुत्र बनाया हुआ था । सरदार हरी सिंह भाई भूप सिंह परोह के जमींदार के लड़के थे ।

सिक्रव मिसलों में भंगी मिसल एक प्रभावशाली मिसल मानी जाती है । प्रारम्भ में फैजलपुरिया और आहलूवालिया मिसलों का ही नाम था । वे दोनों मिसले ही सारे पंथ के सम्मान की पात्र थी परन्तु अहमदशाह अब्दाली के पराजित होकर मरने के बाद इन मिसलों ने आपस में अपने क्षेत्र के विस्तार की प्रतिस्पर्धा में हिस्सा नहीं लिया । अतः ये मिसले क्षेत्रफल की दृष्टि से पीछे रह गई । इस समय रामगढ़िया मिसल का प्रभाव क्षेत्र सतलुज नदी के पार के क्षेत्रों में हो गया । जब वह फिर पँजाब में हस्तक्षेप करने योग्य हुए तो भंगी मिसल का प्रभाव शिखर पर था । उन दिनों कन्हैया मिसल भी शक्तिशाली मिसलों में से एक गिनी जाने लगी थी। इतिहासकारों का विचार है कि भंगी मिसल यदि सतर्कता से कार्य करती तो शुक्रचकिया मिसल के स्थान पर पूरे पँजाब पर इस मिसल का ही राज्य स्थापित होना था परन्तु यह भी ठीक है कि समय बड़ा बलवान है, प्रकृति के नियमों के आगे किस की चलती है ।

भंगी मिसल शक्ति और प्रदेश विस्तार की दृष्टि से सब मिसलों से शक्तिशाली थी । उसका मुख्यालय अमृतसर था और उसके अधीन पन्द्रह से बीस हजार सेना थी । पँजाब के दोनों प्रसिद्ध नगर लाहौर और अमृतसर इस मिसल के अधिकार में थे । गुजरात, झेलम नदी और रावल पिंडी के बीच का प्रदेश भी इसी मिसल के अधिकार में था । इसके अतिरिक्त लाहौर से पाकपट्टन के बीच का प्रदेश भी इस मिसल के अधीन था । हरि सिंह भंगी ने मुलतान को जीतने की भी कोशिश की, किन्तु वह सफल न हो सका । चाहे वह मुलतान न ले सका फिर भी पाकपट्टन तक सभी प्रदेशों तो उसने अपने अधिकार में कर ही लिये थे । इस मिसल की आय पन्द्रह लाख रूपया वार्षिक थी । अमृतसर में हरिसिंह ने एक कटरा 'भंगिया' भी बनवाया था, जो आज भी विद्यमान है । हरिसिंह भंगी सन् 1764 ईस्वी में एक युद्ध में मारे गये ।

सरदार हरी सिंह बहुत स्वाभिमानी तथा प्रगतिशील योद्धा थे । जब वह रणक्षेत्र में जूझते थे तो ऐसा जान पड़ता था कि वह वीर रस में अलमस्त, मृत्यु की चिन्ता से ऊपर उठ कर नृत्य करते हुए (लोटन बावरे) दृष्टिगोचर होते । शत्रु यह समझते थे कि जत्थेदार हरि सिंह जी ने भांग पी हुई है । अतः इस प्रकार जत्थेदार हरी सिंह जी के नाम के साथ भंगी शब्द जुड़ गया । इस प्रकार इन की मिसल को भंगी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई ।

इस मिसल ने सन् 1767 ईस्वी में लाहौर पर नियन्त्रण कर लिया, बस फिर जल्दी ही अपना अधिकार तथा प्रभाव क्षेत्र बढ़ाते चले गये । जो अधिकार क्षेत्र पहले अमृतसर के आसपास ही सीमित था, वह बढ़कर चिनौट तथा झंग तक ले गया । स्यालकोट, नारोवाल तथा करिआल पर भी कब्जा किया । तद्पश्चात् रावलपिंडी को कब्जे में लिया, रावल पिंडी पर नियन्त्रण करने वाला सरदार मिलखा सिंह था । जम्मू के राजा रणजीत देव को अधीनता स्वीकार के लिए विवश किया तथा खिराज (नज़राना) वसूल किया । यहाँ तक बस नहीं हुई, सिन्धू नदी के उस पार के क्षेत्रों में भी इस मिसल ने खालसा पंथ की पताका लहराई । इस मिसल के सरदार रण सिंह बूड़िया ने यमुना नदी के पार के

क्षेत्रों पर अपना ध्वज लहराया । एक बार महाराजा रणजीत सिंह ने भी अधीनता स्वीकार की । भंगी मिसल के सरदारों ने कश्मीर फतेह करने की योजना बनाई परन्तु वह इसमें सफल न हो सके ।

हरिसिंह की मृत्यु पर उसका पुत्र झण्डा सिंह उसके स्थान पर उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ । उसने इस मिसल को काफी उन्नति के शिखर तक पहुँचाया । उसने जम्मू पर आक्रमण कियाऔर वहाँ के राजा रणजीत देव से खिराज प्राप्त किया । उसने सराय के नवाब पर भी आक्रमण किया और जमजमा तोप को अपने अधिकार में कर लिया । उसने कसूर के नवाब से भी भेंट प्राप्त की । 1774 ईस्वी में जय सिंह कन्हैया मिसल ने एक सिक्ख को प्रलोभन देकर जम्मू के निकट एक लड़ाई में झण्डा सिंह को धोखे से कत्ल करवा दिया ।

झण्डा सिंह की हत्या पर उसका भाई गण्डा सिंह उसकी गद्दी पर नियुक्त हुआ । उसने इस मिसल की शक्ति को और भी बढ़ा दिया, किन्तु 1782 ईस्वी में उसकी मृत्यु हो गई । उसकी मृत्यु के बाद उस मिसल में और कोई शक्तिशाली नेता उत्पन्न न हुआ । राजा रणजीत सिंह ने, जो इस समय काफी शक्ति पकड़ चुके थे, ने बड़ी आसानी से 1799 ईस्वी में भंगी सरदारों से लाहौर हथिया लिया, जल्दी ही अमृतसर नगर पर भी अपना नियन्त्रण कर लिया । सन् 1806 ईस्वी में भंगी सरदारों ने महाराजा रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार करके एक लाख रूपये की जागीर प्राप्त कर ली । इस प्रकार इस मिसल का विलय महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में हो गया । सन् 1811 ईस्वी में भंगी मिसल का सरदार साहिब सिंह जी का भी निधन हो गया ।

शुक्रचकिया मिसल

शुक्रचकिया गाँव अमृतसर जिले में स्थित है । इसी गाँव के सरदार नौध सिंह जी इस मिसल के संस्थापक जत्थेदार थे । आप जी के पिता – पितामा प्राचीनकाल से ही यहाँ निवास करते थे। आपके पिता सरदार बुध सिंह एक बहादुर योद्धा तथा प्रगतिशील नेता था । इन्होंने कई युद्धों में भाग लिया, अतः आपके शरीर पर 40 घाव थे । बन्दा सिंह बहादुर सरहिन्द फतेह करने के उपरान्त आप सिक्ख सम्प्रदाय में एक युद्ध में सन् 1712 ईस्वी में काम आ गये। इस प्रकार आपके जत्थे का नेतृत्त्व आपके पुत्र सरदार नौध सिंह जी ने सम्भाला । जब सरदार कपूर सिंह जी ने तरूणा दल का गठन किया तो सरदार नौध सिंह जी ने अपने जत्थे का विलय तरूणा दल में कर दिया । तरूणा दल ने पँजाब का जिला गुजरांवाला विजय कर लिया । तब सरदार नौध सिंह जी ने यहीं अपना मुख्यालय बना लिया और यहीं से अफगानों के साथ सीधी टक्कर लेते रहे । आप अफगानों के साथ जूझते हुए मजीठा क्षेत्र के पास रणक्षेत्र में वीरगति पा गये । आपकी शहीदी के समय आपके पुत्र सरदार चढ़त सिंह की आयु केवल 5 वर्ष की थी ।

सरदार चढ़त सिंह जी का जन्म सन् 1721 ईस्वी में हुआ । सन् 1752 तक सरदार चढ़त सिंह के साथियों की संख्या काफी बढ़ गई, जिसके कारण उन्होंने दोआबा रचना का बहुत सा प्रदेश अपने अधीन कर लिया । सन् 1756 ईस्वी में उनका विवाह गुजरांवाला के सरदार अमीर सिंह की कन्या से हुआ, जिससे उन दोनों के वंश बहुत शक्तिशाली हो गये और दोनों वंशों से मिलकर एक नई मिसल बन गई, जिसका कालान्तर में शुक्रचकिया नाम पड़ गया क्योंकि ये दोनों परिवार इसी गाँव के रहने वाले थे । सन् 1758 ईस्वी में चढ़त सिंह ने ऐमीनाबाद पर आक्रमण कर दिया और वहाँ के मुगल फौजदार को पराजित करके भगा दिया । इस वर्ष आपने स्यालकोट पर आक्रमण करके उसको अपने अधीन

कर लिया । आप ने इस प्रकार प्रगति करते करते अपने पास पन्द्रह हजार सवार और पाँच हजार पैदल सेना तैनात कर ली ।

चढ़त सिंह की बढ़ती हुई शक्ति ने लाहौर के राज्यपाल ख्वाजा आबेद को परेशान कर दिया। अत: उसने चढ़त सिंह की शक्ति को समाप्त करने का निश्चय कर लिया । सन् 1760 ईस्वी में वह एक विशाल सेना लेकर गुजरांवाला पर आक्रमण किया । दूसरी तरफ चढ़त सिंह की सहायता के लिए अन्य मिसलदार भी अपनी अपनी सेनाएं लेकर गुजरांवाला पहुँच गये । इस पर घमासान युद्ध हुआ, इस युद्ध में राज्यपाल ख्वाजा आवेद की बुरी तरह पराजय हुई और वह अपना सा मुँह लेकर लौट गया । सन् 1762 ईस्वी में अहमदशाह अब्दाली ने छठी बार भारत पर आक्रमण किया । जिसे सिक्ख इतिहास में बड़ा घल्लुघारा कहते हैं । अब्दाली के इस सिक्ख हत्या काण्ड में जो वीरता और साहस सरदार चढ़त सिंह जी ने दिखाया, वह अद्‌भुत का था, उसकी उपमा हर सिक्ख योद्धा ने की है । उस समय सरदार चढ़त सिंह के शरीर पर 23 घाव आये थे परन्तु वह स्वाभिमानी सेनानायक जूझता ही रहा था । अब्दाली की शक्ति पँजाब में से समाप्त हो जाने के पश्चात् यह मिसल बहुत प्रसिद्धि को प्राप्त हो गई । प्रतिदिन बहुत से युवक सरदार चढ़त सिंह के पास पहुँचते और उनके सेना में भर्ती होने का निवेदन करते । इस पर सरदार चढ़त सिंह जी उनके समक्ष एक ही शर्त रखते । जो तन मन से सिक्खी धारण करेगा, केवल उन्हीं समर्पित युवकों को ही शुक्रचकिया मिसल की सेना में सम्मिलित किया जाएगा ।

सरदार चढ़त सिंह जी की सेना जिधर भी जाती उधर के समस्त क्षेत्र तथा नगर उनकी अधीनता स्वीकार कर लेते और खिराज देने का वचन देते । आपने भंगी सरदार गुजर सिंह के साथ मिलकर जेहलम पार के क्षेत्र पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया परन्तु समय अनुसार सरदार चढ़त सिंह जी मिसल की प्रगति के लिए विभिन्न विभिन्न कदम उठाते रहे । जब उन्होंने महसूस किया कि भंगी मिसल का प्रभाव समूचे पँजाब पर बढ़ गया है तो उन्होंने कन्हैया मिसल के साथ संधि करके उसके प्रभाव को रोका । इसी प्रकार उन्होंने रामगढ़िया मिसल के साथ बातचीत जारी रखी । यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि सरदार चढ़त सिंह एक सुलझे हुए और स्वाभिमानी सेनानायक थे । निर्णय लेने में इनका कोई सानी नहीं था । पहले नवाब कपूर सिंह जी की और उपरान्त सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया के नेतृत्त्व में रहते हुए ये तीक्ष्ण बुद्धि के स्वामी बन गये थे । इन में सिक्खी की संवेदनशीलता तथा उत्साह असीम था ।

सन् 1779 ईस्वी में सरदार चढ़त सिंह जी ने विशाल सेना के साथ जम्मू पर आक्रमण कर दिया किन्तु ठीक उस समय जबकि युद्ध जोरों पर था, गलती से एक बारूद का हथगोला फट जाने से उनकी मृत्यु हो गई । इस प्रकार यह युद्ध वहीं समाप्त करना पड़ा । उस समय शुक्रचकिया मिसल के अधीन रोहतास का किला (जिला झेलम) वजीराबाद, जिला झंग इत्यादि आ चुके थे ।

सरदार चढ़त सिंह की मृत्यु के साथ उनका बेटा मान सिंह अभी अबोध बालक ही था । उसके बाल्यकाल तक उसकी माता माई देसा इस मिसल का कार्य चलाती रही । सन् 1780 ईस्वी में महा सिंह ने मिसल की बागडोर अपने नियन्त्रण में ले ली । जल्दी ही उन्होंने रसूल नगर, अलीपुर और अकालगढ़ इत्यादि क्षेत्र जीत लिये । जम्मू के प्रदेश को नष्टभ्रष्ट कर दिया । उनके अधीनस्थ सरदारों ने उनके विरूद्ध सिर उठाने का प्रयत्न किया तो उन्होंने उन सब को तुरन्त कुचल कर रख दिया । महा सिंह की बढ़ती हुई शक्ति के कारण जय सिंह कन्हैया का उनके साथ ईर्ष्या के कारण मतभेद हो गया । महासिंह

ने एक बार फिर जस्सा सिंह रामगढ़िया के सम्मुख उसका प्रदेश वापिस दिलवाने में उसकी सहायता का प्रस्ताव रखा जिसे जस्सा सिंह ने मान लिया और इस तरह बटाला नामक स्थान पर जयसिंह कन्हैया के लड़के गुरबख्श सिंह और जस्सा सिंह के बीच घमासान युद्ध हुआ, जिसमें गुरबख्श सिंह मारा गया । बाद में महासिंह और जय सिंह के बीच विरोध समाप्त हो गया । जय सिंह ने अपनी पोती महताब कौर (पुत्री स्वर्गीय गुरबख्श सिंह) का विवाह महा सिंह के लड़के रणजीत सिंह से कर दिया । इस प्रकार रणजीत सिंह की शक्ति बढ़ गई । सन् 1793 ईस्वी में महा सिंह की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर रणजीत सिंह इस मिसल का सरदार नियुक्त हुआ और बाद में उन्होंने विकास करते करते पूरे पँजाब पर नियन्त्रण कर लिया और पँजाब के शासक बन गये ।

कन्हैया मिसल

इस मिसल के जत्थेदार और संस्थापक सरदार जय सिंह थे । वह भाई खुशहाल जाट के पुत्र थे । आपका गाँव कान्हा काच्छा था जो कि लाहौर नगर से दक्षिण की तरफ लगभग 15 मील पर स्थित है । अतः इस मिसल तथा जत्थे का नाम कन्हैया पड़ गया । इस मिसल के प्रारम्भिक इतिहास के बारे में कहा जाता है कि जब सिक्खों की शहीद होने के कांडों के वृतान्त भाई खुशहाल जाट ने सुने तो उन्हें भी वीर रस ने प्रभावित किया और वह भी सिक्खी धारण करने का निश्चय करके सरदार कपूर सिंह जी से मिले । उन्होंने भाई खुशहाल की शुभ मंशा देखकर उन्हें अमृतपान करवाया और इस प्रकार उन्हें सिक्खी में प्रवेश करवा दिया । जब आप सिंह सज गये तो आपने अपने क्षेत्र के बहुत से निवासियों को इसी प्रकार अमृत की पाहुल दिलाई और सभी को तैयार बर तैयार करके सिंह सजा दिया और अपना अलग से एक जत्था बना लिया । बड़ी तथा अति आवश्यक लड़ाइयों में इस जत्थे को ही भेजा जाने लगा ।

खुशहाल सिंह के पश्चात् जब उनके पुत्र जय सिंह इस जत्थे के जत्थेदार बने तो उन्होंने अपनी वीरता से पँजाब के राज्यपाल मीर मन्नू की मृत्यु का पूरा लाभ उठाया । जल्दी ही उन्होंने अमृतसर के उत्तरी प्रदेश रियाड़की को विजय कर लिया । उसके बाद उन्होंने अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से पँजाब में होने वाली अशान्ति से पूरा पूरा लाभ उठाते हुए गुरदासपुर का जिला और काँगड़ा प्रदेश भी अपने अधीन कर लिया । इसी प्रकार धीरे धीरे मुकेरियां, पठानकोट और हाजीपुर के नगरों को भी अपने अधिकार में कर लिया ।

उन्नति करते करते उन्होंने बटाला तथा कलानौर के क्षेत्रों को भी अपने अधिकार में ले लिया । यह क्षेत्र सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया के थे परन्तु उन्हें बलपूर्वक खदेड़ कर पँजाब छोड़ कर जाने के लिए विवश कर दिया । सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने अपना अधिकार क्षेत्र बदल कर हाँसी, हिसार और सिरसा बना लिया । इस सफलता के पश्चात् सरदार जय सिंह ने गारोटा, हाजीपुर, नूरपुर, दातारपुर के पर्वतीय नरेशों से 'राखी' अर्थात खिराज लेना प्रारम्भ कर दिया । अपनी बुलन्दी को और बढ़ाने के लिए राजा सँसार चंद कटोच वालों से काँगड़ा का किला तथा 'राखी' लेना था । काँगड़ा समस्त घाटी की चाबी थी । इसके कब्जे से कन्हैया सरदार सर्वशक्तिमान हो गया । काँगड़ा का किला लगभग एक हजार वर्ष पूर्व निर्मित था । राजा सँसार चंद ने काँगड़े के किलेदार सैफअली खान के विरूद्ध सरदार जय सिंह से सहायता माँगी थी । सरदार जय सिंह स्वयं काँगड़ा गये । उनके पहुँचते ही सैफअली खान की अकस्मात् मृत्यु हो गई । सरदार जय सिंह कन्हैया ने सैफअली के पुत्र जीवन को किला खाली करने

के लिए विवश कर दिया और स्वयँ किले के स्वामी बन गये। सँसार चंद बहुत तड़पा पर मजबूर होकर शांत हो गया। सँसार चंद ने कन्हैया मिसल की अधीनता स्वीकार करने में ही भलाई समझी। यह घटना सन् 1775 ईस्वी की है।

सन् 1777 ईस्वी में जय सिंह कन्हैया ने जस्सा सिंह आहलुवालिया और चढ़त सिंह शुक्रचकिया के साथ मिल कर सम्मिलित गुट स्थापित किया और जस्सा सिंह रामगढ़िया को पराजित करके उसे सतलुज पार भगा दिया। इस प्रकार इन्होंने उसका प्रदेश अपने अधिकार में ले लिया। जयसिंह ने पहाड़ी नरेशों को भी अपने अधीन कर लिया था किन्तु कुछ समय बाद महा सिंह शुक्रचकिया और जयसिंह के बीच मतभेद उत्पन्न हो गया। इस पर महा सिंह शुक्रचकिया ने जस्सा सिंह रामगढ़िया को हिसार प्रदेश से वापिस बुला लिया और उसका सभी प्रदेश जयसिंह कन्हैया से लौटाने के लिए अपनी सहायता का वचन दिया। इस प्रकार जस्सा सिंह रामगढ़िया अपने प्रदेश के पूर्व अधिकार को प्राप्त करने के के लिए शीघ्र ही मध्य पँजाब में पहुँच गया। बटाला नामक स्थान पर जय सिंह कन्हैया के लड़के गुरबख्श सिंह और जस्सा सिंह रामगढ़िया के बीच एक घमासान युद्ध हुआ, जिसमें गुरबख्श सिंह वीर गति पा गये और कन्हैया मिसल के लोगों की पराजय हुई। समझौते के अनुसार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने वह सभी प्रदेश जो जय सिंह कन्हैया ने उससे छीन लिये थे, वापिस ले लिया। अब बटाला भी उनके अधिकार में आ गया। कुछ समय बाद जय सिंह कन्हैया ने महा सिंह शुक्रचकिया को फिर अपने साथ गाँठ लिया और नूरपुर और चम्बा के राजाओं की सहायता से बटाला लौटाने की कोशिश की किन्तु वह जस्सा सिंह रामगढ़िया से बटाला वापिस न ले सका।

जब जय सिंह कन्हैया ने महा सिंह शुक्रचकिया से प्रगाढ़ मित्रता स्थापित करने के लिए अपनी पोती महताब कौर (पुत्री स्वर्गीय गुरबख्श सिंह) का विवाह महाराज रणजीत सिंह से कर दिया जो महा सिंह शुक्रचकिया का पुत्र था। इस विवाह ने बाद में महाराजा की उन्नति के लिए बहुत बड़े साधन जुटाए क्योंकि जब जय सिंह की मृत्यु पर कन्हैया मिसल का सभी प्रबन्ध उसकी पुत्रवधू अर्थात रणजीत सिंह की सास माई सदा कौर के हाथ में आया तो उसने रणजीत सिंह को बहुत सहायता दी, जिससे महाराजा ने लाहौर और अन्य स्थानों पर सुगमता पूर्वक अधिकार कर लिया। कुछ समय तक तो रणजीत सिंह और उसकी सास माई सदा कौर के बीच सम्बन्ध अच्छे रहे परन्तु ज्योंहि उनके आपस में सम्बन्ध बिगड़े तो महाराजा ने अपनी सास को नज़रबन्द कर दिया और कन्हैया मिसल के सभी प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया।

फुल्कियां मिसल

फुल्कियां मिसल के पूर्वज चौधरी फूल जी थे जो सन्धु जाट कहलाते थे। वर्तमान फुल्कियां रियासतों अर्थात पटियाला, नाभा और जींद के महाराजाओं का सम्मिलित पितामा बालक फूल था। जिसे सिक्खों के सातवें गुरू हरिराय जी से आशीर्वाद प्राप्त हुआ था कि इस बालक की संतानें बहुत बड़े नरेश होंगे। जिनके घोड़े यमुना नदी तक का पानी पिया करेंगे आदि। चौधरी फूल के बेटों रामा और तिलोका को गुरू गोबिन्द सिंह जी ने भी आशीष दी थी क्योंकि इस मिसल के पूर्वज का नाम फूल था। अतः इस मिसल का नाम फुल्कियां पड़ गया।

फुल्कियां मिसल के संस्थापक बाबा आला सिंह जी का जीवनकाल 1696 ईस्वी से 1765 ईस्वी तक का है। आप 1714 ईस्वी में राजनीति में उतरे और अपने पिता की तरह ही तलवार चलाई। जिस प्रकार जालंधर दुआबा के राज्यपाल के विरूद्ध धावा बोल दिया, उसे रण भूमि में मार कर विजय प्राप्त की और बहुत बड़े क्षेत्र को अपने नियन्त्रण में ले लिया। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से उत्पन्न अशान्ति पँजाब में मुगल राज्यपालों की दुर्बलता और केन्द्रीय दिल्ली सरकार की कमजोरियों से लाभ उठा कर आला सिंह ने बरनाला और उसके आसपास के सभी प्रदेश अपने अधिकार में कर लिये। 1762 में अहमदशाह अब्दाली ने दूसरे घल्लूघारा के बाद बाबा आला सिंह को मालवा प्रदेश का अपनी तरफ से नायब नियुक्त किया था। 1764 ईस्वी में इसी आला सिंह ने सिक्ख सरदारों को सरहिन्द के राज्यपाल जैन रवा के विरूद्ध लड़ाई में सहायता दी। जिसमें जैन खान की पराजय हुई, 1765 ईस्वी में अहमदशाह अब्दाली ने बाबा आला सिंह को एक नगारा और एक झण्डा शाही सम्मान के रूप में दिये। बाबा आला न केवल एक वीर सेनापति ही थे बल्कि वे एक पवित्र और धार्मिक सिक्ख भी थे। उनका जीवन अत्यन्त पवित्र और स्वच्छ था। एक बार उन्हें अहमदशाह अब्दाली को सवा लाख रूपये दण्ड रूप में अपने सिक्खी स्वरूप के लिए देना पड़ा। उनकी पत्नी श्रीमती फतों जी ने गरीबों, अनाथों और असहाय लोगों के लिए धर्मार्थ लंगर प्रारम्भ कर रखा था।

सन् 1765 ईस्वी में बाबा आला सिंह जी का देहान्त हो गया। उसके स्थान पर उनका पोता सरदार अमर सिंह इस मिसल का शासक नियुक्त हुआ। उनके शासनकाल में यमुना नदी और सतलुज के बीच पटियाला रियासत सभी राज्यों से सबसे अधिक शक्तिशाली बन गई। उन्होंने मनीमाजरा, कोट कपूरा, सैफाबाद और भठिण्डा को जीत करके अपने राज्य में शामिल कर लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने हाँसी, हिसार और रोहतक को भी अपने अधिकार में ले लिया। वे इतने शक्तिशाली हो चुके थे कि भट्टी और मुगल उनकी बढ़ती हुई शक्ति को समाप्त न कर सके, इसलिए अहमदशाह अब्दाली ने इन्हें 'महाराजाधिराज' की उपाधि भी दी। मार्च, 1772 ईस्वी में अमर सिंह जी का भी देहान्त हो गया।

अमर सिंह के पश्चात् इस मिसल का तीसरा उत्तराधिकारी साहिब सिंह जी थे। वह छोटी आयु के ही थे, इसलिए मिसल का कार्यभार उनकी बहन राजकुमारी राजकौर तथा साहिब कौर के हाथ आया। केवल सात वर्ष का बालक कमजोर शासक समझा जाने लगा। अतः उन दिनों मराठों ने पटियाला पर आक्रमण कर दिया। इस विकट समय में उनकी बहन साहिब कौर ने मराठों का डट कर मुकाबला किया और उनको पराजित करके मार भगाया। कुछ समय बाद साहिब सिंह और उनकी पत्नि आशाकौर के बीच कुछ घरेलू झगड़ा हो गया। उन्होंने महाराज रणजीत सिंह को मध्यस्थ नियुक्त किया। इसी बहाने से रणजीत सिंह ने लगातार तीन बार अपनी सेनाएं सतलुज नदी पर मालवा प्रदेश को विजय करने के लिए भेजी परन्तु वे इस क्षेत्र पर अधिकार न कर सकी। अँग्रेजों के दिल्ली व हरियाणा में पहुँचने के कारण परिस्थिति बदल गई। नाभा, जींद और कैथल की रियासतें भी इस मिसल की ही शाखाएं थी। चाहे उनके मिसलदार अलग अलग थे, इस मिसल का महाराजा रणजीत सिंह से मतभेद हो गया क्योंकि उन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया था। अतः इन सभी रियासतों ने अँग्रेजों की राखी (सुरक्षा) माँग ली। इस प्रकार अँग्रेजों ने महाराजा रणजीत सिंह को 1809 ईस्वी में अमृतसर संधि पर हस्ताक्षर करने पर विवश कर दिया और इन रियासतों को अपने शरण में लेकर जिन्दा रखा।

नकई मिसल

नकई मिसल के संस्थापक सरदार हीरा सिंह जी थे, जिनका जन्म 1706 ईस्वी में हुआ था । उन्होंने तीस वर्ष की आयु में भाई मनी सिंह जी से पाहुल प्राप्त कर ली थी । इनके पिता चौधरी हेमराज जी भरवाल तहसील के चनीया गाँव के निवासी थे, इस गाँव को नका भी कहते थे । जिन दिनों सिक्ख अपने अस्तित्त्व की सुरक्षा के लिए संघर्षरत थे । सरदार हीरा सिंह जी ने अपने गाँव के अन्य जवानों को एकत्रित करके जत्था बना लिया और बहुत से उत्साहित लोगों का सहयोग प्राप्त करके अपने आसपास के बहुत बड़े भू – भाग पर नियन्त्रण कर लिया । जल्दी ही वह मुगलों की कमजोरियों का लाभ उठाते हुए नका क्षेत्र के स्वामी बन गये । इस प्रकार समस्त नाकों पर कब्जा करके सिक्ख संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान डालना प्रारम्भ कर दिया । इनका कार्यक्षेत्र आने वाले आक्रमणकारियों को रोकना हुआ करता था और सीना तान कर शत्रु का सामना करना होता था और उसी समय तुरन्त अन्य मिसलों को हमलावर की सूचना पहुँचाना ही इनका कार्य था । बड़े घल्लूघारे के सम्मय इस मिसल ने ही सम्मय रहते संदेश दिया था कि अब्दाली महीनों का सफर दिनों में तय करके सिक्खों पर हमला करने वाला है ।

सन् 1767 ईस्वी में जब जत्थेदार हीरा सिंह जी को शिकायतें पहुँची कि बाबा फरीद की गद्दी का वारिस शेखशजाह परम्परागत मर्यादा छोड़कर हिन्दुओं का दमन करके उनकी भावनाओं से खिलवाड़ कर रहे हैं तो जत्थेदार हीरा सिंह ने पाकपट्टन पर धावा बोल दिया, इस युद्ध में वह शहीद हो गये और उनकी सेना वापिस लौट आई । उन दिनों हीरा सिंह जी का पुत्र सरदार डल सिंह नाबालिग था । अतः जत्थेदारी उनके भाई सरदार धन्नासिंह के पुत्र सरदार नाहर सिंह को मिली । सरदार नाहर सिंह भी बहुत समय तक जीवित न रहा । कोट कमालिया के युद्ध में सन् 1768 ईस्वी में आप जी भी शहीद हो गये ।

जत्थेदार नाहर सिंह के बाद इस मिसल का नेतृत्त्व जत्थेदार रणसिंह ने किया । जब सभी मिसलों ने अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाना प्रारम्भ किया तो इस मिसल ने भी अपना ध्यान मुलतान तथा कसूर क्षेत्रों की तरफ किया । भंगी मिसल वाले इस मिसल के महत्त्व व शक्ति को जानते थे । अतः जत्थेदार गण्डा सिंह जी ने इस मिसल से सहायता माँगी ताकि मुलतान को विजय किया जा सके । मुलतान व कसूर क्षेत्र को नियन्त्रण में करने से इस मिसल का भी बहुत मान – सम्मान बढ़ा । जत्थेदार रण सिंह एक अच्छे नीतिवान योद्धा थे । उन्होंने सारी मिसलों के बीच अपना संतुलन कायम रखा हुआ था । अपनी इस महत्त्वपूर्ण स्थिति के फलस्वरूप ही इस मिसल की सभी के लिए आवश्यकता बनी रही । इस मिसल के अधिकार क्षेत्र में चनियां, कसूर, शखपुर, गुमर तथा कोट कमालिया तक था । जब सन् 1790 ईस्वी में रण सिंह जी का देहान्त हो गया तो जत्थेदारी ज्ञान सिंह के हाथ में आ गई । इस मिसल के जवानों की संख्या तीन हजार के लगभग थी । नाकों पर तैनात रहने के कारण सभी लड़नामरना अच्छी तरह जानते थे ।

जत्थेदार रण सिंह ने तो इन को एक कड़ी में बांधे रखा था परन्तु जब उन जैसा योग्य सेनानायक ना रहा तो इस मिसल के सिपाही आपस में ही लड़ने लग गये । सरदार ज्ञान सिंह की मृत्यु सन् 1804 ईस्वी में हुई । उनके पश्चात् सन् 1807 ईस्वी में महाराजा रणजीत सिंह जी ने इस मिसल के समस्त क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया और ज्ञान संह के पुत्र सरदार काहन सिंह को डेढ़ लाख रूपये की जागीर दे दी गई ।

डल्लेवालिया मिसल

डल्लेवालिया मिसल के संस्थापक सरदार गुलाब सिंह जी थे। डल्लेवाली गाँव रावी नदी के किनारे डेराबाबा नानक क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी गाँव के ही गुलाबा क्षत्री जो परचून की दुकान किया करते थे। मुगलों के अत्याचारों को देखकर उनसे लोहा लेने के लिए अमृतपान करके सिंह सज गये और एक विशाल जवानों का जत्था बना लिया। अब इनका नाम गुलाब सिंह हो गया था।

सन् 1745 ईस्वी में सरबत खालसा सम्मेलन में गुरमता पारित किया गया कि रावी नदी के किनारे एक किला बनाया जाये जो शत्रुओं को रोकने तथा उनसे सुरक्षा प्रदान करने के काम आ सके।किला बन जाने के बाद सरदार गुलाब सिंह को इस की देखभाल का कार्य सौंपागया। सरदार गुलाब सिंह के निकटवर्ती भाई गुरदयाल सिंह, हरिदयाल व जयपाल सिंह भी अमृतपान करके इसी जत्थे में सम्मिलित हो गये थे। छोटे घल्लुघारे के समय जब सिक्ख तीनों दिशाओं से घिर गये थे तो उस समय एक तरफ रावी नदी थी, दूसरी तरफ तपता हुआ रेगिस्तान तथा पीछे लखपत राय और यहिया खान की सेनाएं आ रही थी। उस विकट समय में सिक्खों ने यह विचार बनाया कि रावी नदी पार कर ली जाये। महीना ज्येष्ठ का था और दरिया अपने यौवन पर था। अतः पानी में तीव्र गति थी। ऐसे समय में सरदार जयपाल सिंह और उनके भाई हरिदयाल सिंह ने परामर्श दिया कि सर्वप्रथम हम दोनों घोड़ों पर सवार होकर नदी पार करने का प्रयास करते हैं। यदि हम सफल हो गये तो सभी वहीर अर्थात बाकी परिवारों सहित काफिला नदी पार करने का साहस करे, अन्यथा नहीं। ऐसा ही किया गया परन्तु दुर्भाग्य से वे दोनों नदी में बह गये। अतः बाकी सिक्खों ने नदी पार करने की योजना रद्द कर दी। इस प्रकार इन योद्धाओं ने अपने प्राणों का बलिदान देकर एक बड़ी भूल करने से समस्त सिक्खों का जीवन सुरक्षित कर दिया।

सन् 1748 ईस्वी में जब मिसलों का अस्तित्त्व प्रकट हुआ तो सरदार गुलाब सिंह की मिसल डल्लेवालिया मिसल कहलाई क्योंकि इस जत्थे के अधिकांश जवान इसी गाँव के थे। सरदार गुलाब सिंह जी कलानौर के रणक्षेत्र में सन् 1755 ईस्वी में वीरगति को प्राप्त हुए। तब उनके स्थान पर मिसल के जत्थेदार सरदार गुरदयाल सिंह जी को बनाया गया परन्तु अगले वर्ष वे भी एक युद्ध में शहीदी प्राप्त कर गये। तद्पश्चात् सरदार तारा सिंह घेबा जी मिसल के अध्यक्ष बने। सन् 1758 ईस्वी में उड़मुड़ टांडा के युद्ध में दीवान विश्वम्बर दास की हत्या हो गई। तब सिक्खों ने दुआबा, जालन्धर पर अपना अधिकार कर लिया। उस समय लगभग तीन लाख लगान का क्षेत्र सरदार तारा सिंह घेबा की मिसल डल्लेवालिया को मिला। सन् 1764 ईस्वी में जब सिक्खों ने जैन खान को मौत के घाट उतार कर सरहिन्द फतेह किया, उस समय इस मिसल को बहुत बड़े भू-भाग पर अधिकार करने को मिला। इस प्रकार इस मिसल की वार्षिक आय 8 लाख रूपये और बढ़ गई।

जत्थेदार तारा सिंह जी बहुत अच्छे सेनानायक थे, वे प्रतिक्षण पंथ के हित के लिए अपने प्राण न्योछावर करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। वह अपने साथी मिसलदारों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर रणभूमि में जूझते थे, इसलिए इनकी मिसल बहुत आदर भाव से देखी जाती थी। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों का सामना वह डटकर करते रहे थे। उनकी अधिकांश टक्कर अब्दाली के सेनानायक जहान खान के संग ही होती रही क्योंकि अमृतसर की सुरक्षा का भार इन्होंने अपने कंधो पर लिया हुआ था।

कसूर नगर पर नियन्त्रण करते समय आपने भंगी मिसल का साथ दिया । अत: वहाँ से लगभग 4 लाख रूपये की सम्पत्ति आपके हाथ आई । जब प्रसिद्ध सेठ गोहर दास को आपने अमृतपान करवा कर सिंह सजाया तो आपकी मिसल का महत्त्व और अधिक बढ़ गया। इस मिसल के सिपाहियों की संख्या नौ हजार के लगभग रहने लगी थी ।

अब्दाली के पराजित होने के पश्चात् सिक्ख मिसलों के आपसी क्लेश में भाई तारा सिंह जी ने भाग नहीं लिया । जत्थेदार तारा सिंह घेबा की मृत्यु के पश्चात् महाराजा रणजीत सिंह ने इस मिसल के सभी प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया और उनके उत्तराधिकारियों को जागीर देकर शांत कर दिया गया ।

शहीद सिंह अथवा निहंग मिसल

शहीद सिंह अथवा निहंग मिसल की नींव रखनेवाले वे सिक्ख थे, जो मुसलमान शासकों के अत्याचारों से तंग आकर धर्म के नाम पर मर मिटने के लिए एक संगठन बनाकर उनका विरोध किया करते थे । बाबा विनोद सिंह जी के समय इस जत्थे का गठन हो गया था । उनके बाद बाबा दीप सिंह जी ने इस जत्थे का नेतृत्त्व सम्भाल लिया । इस जत्थे के समस्त जवान नीले वस्त्र धारण करते थे । जनसाधारण इन लोगों को निहंग कह कर पुकारते थे । निहंग लोग निष्काम जनसाधारण की सेवा में व्यस्त रहते थे । उन्हें अपनी सुख की चिन्ता नहीं होती थी और दूसरों के हितों की अधिक चिन्ता सताती थी । सिक्खों की परम्पराएं निर्माण करने में सिक्ख सेना की नियमावली (जीवन पद्धति) अनुशासन व मर्यादाएं इन्हीं की देन हैं । युद्धसमय के नारे और चड़ढीकला (साहस का प्रदर्शन) के बोल जो इन लोगों ने प्रचलित किये, वह आविष्कार आज भी भारतीय सिक्ख सेना में प्रयोग में लाये जाते हैं ।

इस मिसल के जत्थेदार बाबा दीप सिंह जी जहाँ शूरवीर व अग्रणी जरनैल (सेनानायक) थे वहीं आप जी विद्वान भी थे । आप जी ने श्री गुरू ग्रंथसाहिब जी की कई प्रतियां दमदमा साहिब (बठिण्डा) में बैठ कर तैयार की थी । दमदमा (साबों की तलवंडी) संघर्ष के केन्द्र से दूर होने के कारण विपदाओं व कष्टों से सुरक्षित था । तब भी आप समय समय पर अपने जत्थे के जवानों को लेकर अपने पीड़ित भाईयों की सहायता के लिए पहुँच जाते थे।

सन् 1748 ईस्वी में जब सरबत खालसा सम्मेलन में 75 सिक्ख जत्थों को ग्यारह अथवा बारह जत्थों में विभाजित किया गया तो आप जी ने निहंग सिंहों का अलग से जत्था तैयार कर लिया जिनका कार्यक्षेत्र रणक्षेत्र में सर्वप्रथम शत्रु पर धावा बोलना होता था अर्थात वे अपने प्राणों की बलि देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे, इसलिए आपके जत्थे का नाम शहीद मिसल निहंग पड़ गया ।

सन् 1757 ईस्वी के नवम्बर मास में अहमदशाह अब्दाली का सेनानायक जहान खान श्री हरि मन्दिर (दरबार साहब) पर कब्जा करके वहाँ पर पवित्र सरोवर तथा भवनों का अपमान कर रहा था, तब आपने समस्त सिक्ख जगत को जागृत करके मर मिटने के लिए ललकारा और अपना बलिदान देकर अपने तीर्थ स्थलों को स्वतन्त्र करवा लिया । आप की शहीदी के उपरान्त सरदार कर्म सिंह जी इस मिसल के संचालक नियुक्त हुए । इस जत्थे के सरदार गुरबख्श सिंह जी ने सन् 1764 ईस्वी में अपने तीस साथियों के साथ दरबार साहब की सुरक्षा हेतु अब्दाली के तीस हजार सैनिकों के साथ जूझते हुए प्राणों का बलिदान दे दिया ।

इस मिसल में अधिकतर अकाली थे, जिनकी वेशभूषा नीले वस्त्र ही होते थे और जो अपने गले व सिर में गोल तेज चक्र धारण किये रहते थे । इस मिसल का प्रदेश सतलुज नदी के पूर्व में था । इस मिसल के पास हर समय दो हजार जवानों की सेना तैयार रहती थी ।

जत्थेदार कर्मसिंह जी के उपरान्त अकाली फूला सिंह जी और सरदार साधू सिंह ने इस मिसल की आनबान को बनाये रखा । महाराजा रणजीत सिंह के समय इस मिसल ने अपना केन्द्र अकाल तख्त साहब को बना लिया। महाराजा रणजीत सिंह ने इस मिसल को छेड़ना उचित न समझा । वह अन्त तक इस मिसल का आदर करते रहे ।

निशानवालिया मिसल

सरदार बघेल सिंह जी जिन्होंने सन 1781 में दिल्ली पर विजय प्राप्त कर लाल किले पर केसरी झंडा (निशान साहिब) लहराईया। उन दिनों उनके पास तीस हजार घुड़सवारो की सेना थी। उस स्थान को तीस हजारी कोट कहते है।

प्रत्येक सेना में निशान (पताका) का महत्त्व माना जाता है । निशान के गिरने से सेना का मनोबल ही नहीं टूट जाता है बल्कि पराजय भी हो जाती है । निशान (झण्डा) न गिरने देना ही युद्ध भूमि में विजयघोष करवाता है । अतः समस्त सिक्ख मिसलों में से चुने हुए सिक्ख छांट कर इस जत्थे में सम्मिलित किये गये थे । जब निशान (ध्वज) उठाने वाला युद्ध में शहीद हो जाता था तो निशान गिरने से पूर्व ही दूसरा निशान को उठा लेता था । इस जत्थे की शूरवीरता की कई गाथाएं प्रचलित हैं । इनका एक उदाहरण इस प्रकार है – भाई आलम सिंह को घायल अवस्था में अब्दाली के सैनिकों ने पकड़ लिया । उन्होंने भाई आलम सिंह जी को झण्डा फैंकने के लिए कहा परन्तु वह टस से मस न हुए । इस पर फौजदार ने गर्ज कर कहा – झण्डा फैंक दें, अन्यथा तेरे हाथ काट दिये जाएंगे । उत्तर में आलम सिंह ने जोश में कहा – मैं झण्डे को पैरों से पकड़ लूंगा । यदि पैर भी काट दिये जाये तो ? तब आलम सिंह ने कहा कि मैं झण्डे को दाँतों से पकड़ लूँगा । सिर भी काट दिया जाये तो ? इस पर फिर से ऊँचा जयकारा लगाते हुए भाई जी ने कहा – फिर वही रक्षा करेगा जिसका यह झण्डा है । काज़ी नूरमुहम्मद ने इस घटना का वर्णन किया है ।

पहले पहले निशान वाली मिसल का कोई अलग से अस्तित्त्व न था । प्रत्येक मिसल में से इस मिसल में सिपाही लिये जाते थे, वह अपना खर्च लेते थे । उन दिनों संगत सिंह जी इस मिसल के जत्थेदार थे । यह कोई प्रसिद्ध मिसल न थी । अब्दाली को पँजाब से भगाने के बाद जत्थेदार संगत सिंह ने अम्बाला क्षेत्र को अपना केन्द्र बनाकर करनाल तक के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया । आपके पश्चात् जत्थेदार मुहर (मोहन) सिंह ने नेतृत्त्व सम्भाला । जत्थेदार मुहर सिंह ने कोई नया क्षेत्र अपनी मिसल में नहीं मिलाया । वह उसी में ही सन्तुष्ट रहे । आप जी की कोई सन्तान नहीं थी । अतः महाराजा रणजीत सिंह ने इस पर अधिकार कर लिया परन्तु 1809 ईस्वी में अँग्रेजों के साथ हुई संधि के अनुसार यह क्षेत्र अंग्रेजों के नियन्त्रण में चला गया । उन दिनों लगभग दो हजार सैनिक इस मिसल में हुआ करते थे ।

करोड़ सिंहिया मिसल

करोड़ सिंहिया मिसल के पूर्वज सरदार शाम सिंह जी गाँव नारली के निवासी थे। सन् 1739 ईस्वी में आप जी नादर शाह की सेना से जूझते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये। तद्पश्चात् उनका सहयोगी सरदार कर्म सिंह इस जत्थे के मुखिया बने परन्तु वह भी सन् 1746 ईस्वी के एक युद्ध में शहीद हो गये। तब इस जत्थे का नेतृत्त्व सरदार करोड़ा सिंह जी ने सम्भाला। आप गाँव फैजगढ़ जिला गुरदासपुर के निवासी थे।

जब सन् 1748 ईस्वी में मिसलों का गठन किया गया तब आपके जत्थे को एक मिसल की मान्यता प्राप्त हुई। इस मिसल का नाम मिसल फैजगढ़िया पड़ गया परन्तु इस मिसल को आपकी वीरता के कारण आपके नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

सरदार करोड़ सिंह जी बहुत साहसी योद्धा थे, उन्होंने उड़मुड़ टांडा के युद्ध में जालन्धर के विश्वम्बर दास दीवान (मुख्य मंत्री) को मार गिराया था। सिक्ख संघर्ष में सरदार करोड़ सिंह जी ने बहुत सी आर्थिक सहायता भी की। वह उस क्षेत्र के धनाढ्य व्यक्तियों में से एक थे। इस मिसल का प्रभाव तथा अधिकार क्षेत्र बंगा, नवां शहर और बुरवा इत्यादि क्षेत्र थे। इस मिसल का मुख्य लक्ष्य सरहिन्द के नवाब को सदैव के लिए समाप्त करना था, जिसमें वे पूर्ण रूप से सफल हुए। अहमदशाह अब्दाली को उसके चौथे आक्रमण में दिल्ली से लौटते समय सर्वप्रथम इसी जत्थे ने बुरी तरह लूटा और उससे अनेकों बन्दी बनाई गई अबलाओं को छुड़वाने में सफल हुए। जब अब्दाली सन् 1765 ईस्वी में सिक्खों से परास्त होकर वापिस लौट गया और उसके पास जब सिक्खों से सीधी टक्कर की क्षमता न रही तब इस मिसल ने अपना प्रभाव क्षेत्र का विकास करके सतलुज नदी पार भी कर लिया। इस मिसल के दो प्रमुख वीर योद्धा थे जिनके नाम क्रमशः जत्थेदार मस्तान सिंह तथा जत्थेदार कर्म सिंह थे। इन दोनों के वीरगति प्राप्त करने पर सन् 1761 ईस्वी को जत्थेदारी सरदार बघेल सिंह जी को प्राप्त हुई। यह युवक बहुत साहसी तथा बहुमुखी प्रतिभा का स्वामी था। आप जी का निवास स्थान गाँव झबाल जिला अमृतसर था। जिन दिनों आप करोड़ सिंहिया मिसल के संचालक बने उन दिनों भारत की राजनीतिक परिस्थितियां इस प्रकार थीं –

मुगलों का अधिकार क्षेत्र इलाहाबाद के प्रान्त तक ही सीमित था। पूर्व की तरफ अवध के नवाब का राज्य था। दक्षिण की ओर भरतपुर के जाटों का ही अधिकार था। पश्चिम की तरफ राजपूतों का हाथ ऊपर था, शाह आलम द्वितीय स्वयं इलाहाबाद में था। दिल्ली नजीबुदौला के अधिकार में थी। दिल्ली नगर की पुरानी शानोशौकत काफूर हो गई थी। भूख ही नाच करती थी। जादू नाथ सरकार ने ठीक ही लिखा है – 'दिल्ली इतनी बद–किस्मत थी कि अफगानों, मरहट्टों, सिक्खों, जाटों, गूजरों तथा पिंडरियों के हाथो तबाह होती रही। उस समय किसानों की दशा बहुत दर्दनाक थी। इस तरह मरहट्टों का साम्राज्य भी टूट गया था। ग्वालियर के सिंधियों, बड़ौदा के गायकवाड़, इंदौर के होलकुर नाम मात्र ही पेशवा के अधीन थे। नागरपुर के भौसले ने आज़ादी का ऐलान कर दिया था। पेशवा उत्तरी हिन्दुस्तान में हाथ पसार रहा था। मरहट्टे चाहे शक्तिशाली दिखाई देते थे परन्तु उनकी शक्ति कम हो गई थी। जाटों ने आगरा और जयपुर के बीच हकूमत बना ली थी। उस समय जाट शक्तिशाली थे। जाट राज्यों की आर्थिक स्थिति मजबूत थी। राजपूतों का नेता माधो सिंह था। उसका अधिकार क्षेत्र जैन नगर में था। जैन नगर के समीप मारवाड़ का राजा विजय सिंह था। रूहेले

दिल्ली व हिमालय के बीच अपना अधिकार जमा चुके थे। बरेली उनका केन्द्र था। नजीबुद्दौला हमीज रहमतखां तथा अहमद खान बंगरा प्रसिद्ध नेता थे। उत्तर पूर्व गँगा में सुजाहुदौला, एक सुलझा हुआ तथा शानदार जरनैल था। अँग्रेजों ने क्लाइव के नेतृत्त्व में बँगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानगी ले ली थी। उत्तर सरकार पर कब्जा था व कर्नाटक का नवाब अँग्रेजों का पानी भरता था।

बड़े घल्लूघारे के समय (सन् 1762 ईस्वी) जत्थेदार करोड़ा सिंह जी को अनेकों घाव सहन करने पड़े परन्तु वह शूरवीर प्रथम पंक्ति में होकर लड़ते रहे। सन् 1769 ईस्वी में जैन खान को मौत के घाट उतार करके सिक्खों ने समस्त सरहिन्द क्षेत्र को आपस में बाँट लिया था। इस बँटवारे में हरियाणा क्षेत्र में आपके हिस्से में बहुत बड़ा भूभाग हाथ आया। तद्पश्चात् दल खालसा के सेनानायक सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया के नेतृत्त्व में सरदार करोड़ा सिंह जी अपनी मिसल के सिपाहियों को लेकर सन् 1764 की फरवरी मास के अन्त में बुडिया घाट से यमुना नदी पार कर गये। सर्वप्रथम सहारनपुर, फिर शामली, कंदेला, अंबली, मीरांपुर, देवबन्द, मुजफ्फर नगर, जबलापुर, कनखल, लंढोरा, नाजीबाबाद, नगीना, मुरादाबाद चन्दौसी अनूप शहर, मठ मुनीश्वर आदि नगरों के शासकों से खिराज वसूल की। इन युद्धों में दिल्ली के शासक नजीबुद्दौला की सेना से लोहा लेते समय सरदार करोड़ा सिंह जी गोली लगने से वीरगति को प्राप्त हुए। इस पर उनके स्थान पर मिसल के सरदार बघेल सिंह जी बने। सन् 1769 ईस्वी में जब नजीबुद्दौला के विरूद्ध राजा जवाहर मल की सिक्खों ने सहायता की, उस समय सरदार बघेल सिंह जी अपने सिपाहियों सहित सम्मिलित थे।

अब्दाली के आठवें आक्रमण के समय सरदार बघेल सिंह जी ने अब्दाली के शिविर को बुरी तरह लूट लिया और उसे परास्त करके वहाँ से वापिस लोटने पर विवश कर दिया। दो वर्ष बाद मई, 1767 ईस्वी में सिक्खों ने पुनः यमुना पार धावा बोल दिया। उन दिनों अब्दाली ने भारत पर नौंवा आक्रमण किया हुआ था। अब्दाली ने अपने सेनानायक जहान खान को विशाल सेना सहित नजीबुद्दौला की सहायता के लिए भेजा। जहान खान ने सिक्खों पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में बघेल सिंह गम्भीर रूप में घायल हो गये। इस पर वहाँ से सिक्ख पँजाब लौट आये। इस बीच अब्दाली ने फिर से भारतीय अबला महिलाओं को पकड़ कर अपनी दासियाँ बना लिया। जब वह वापिस लौटने लगा तो दल खालसा के सरदारों ने उस पर जेहलम नदी पार करते समय आक्रमण कर दिया और समस्त अबला महिलाओं को छुड़वा लिया। इस अभियान में बघेल सिंह का भी बहुत योगदान था।

अहमदशाह अब्दाली का भय सिक्खों के हृदय पर कभी रहा ही नहीं। अब सिंह उसे परास्त बादशाह से अधिक महत्त्व नहीं देते थे। अतः सिक्खों ने पुनः सन् 1768 ईस्वी में यमुना पार के क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। इस बार नजीबुद्दौला ने सिक्खों से संधि करने का मन बना लिया। उसने मुकाबला करने के स्थान पर गँगा – यमुना के मध्य क्षेत्र को सिक्खों की रक्षा वाला क्षेत्र मान लिया और प्रत्येक फसल में सिक्खों को किसानों से निश्चित दर अनुसार लगान मिलने लगा।

यह वह समय था जब सिक्ख एक बहुत बड़ी राजनीतिक शक्ति में उबरे थे। सिक्खों का प्रभाव क्षेत्र सिंधू नदी से लेकर यमुना नदी तक फैल चुका था परन्तु खेद की बात यह थी कि शक्ति प्राप्ति की दौड़ में अधिकांश मिसले अधिक से अधिक क्षेत्रों को अपने नियन्त्रण में लेने की होड़ में लग गई। परिणामस्वरूप कई बार आपस में भी लड़ पड़ते, जिस कारण वे अपना ध्यान शत्रु को मार गिराने में नहीं लगा सके।

इसी संदर्भ में यह घटना बहुत सोचने समझने की थी । सन् 1769 ईस्वी में सरदार अमर सिंह पटियाले वाले ने सरदार बघेल सिंह की मिसल के कुछ गाँवों को अपने अधिकार में ले लिया । इस पर दोनों पक्षों में युद्ध ठन गया । घुड़ाम के रण में सेना आमने सामने हुई परन्तु जल्दी ही राजा अमर सिंह को भूल का अहसास हुआ । उसने अपने वकील द्वारा संधि का संदेश भेजा जो स्वीकार कर लिया गया । इस पर स्थाई मित्रता स्थापित करने के लिए राजा अमर सिंह ने अपने पुत्र साहिब सिंह को सरदार बघेल सिंह के हाथों अमृतपान करवाया ।

सन् 1773 ईस्वी में जब उत्तरप्रदेश के जलालाबाद क्षेत्र के पंडितों की प्रर्थना को स्वीकार करते हुए सरदार कर्म सिंह ने यमुना पार की तो उस समय उनके साथ सरदार बघेल सिंह जी भी थे। जलालाबाद के स्थानीय हाकिम (शासक) हसन खान ने एक नवेली दुल्हन जो कि एक ब्राह्मण स्त्री थी, का बलपूर्वक अपहरण कर लिया था । वह दुष्ट प्रायः ऐसी घिनौनी करतूत करता ही रहता था । अतः उसे इस बार सबक सिखाने के लिए असहाय अथवा दीन लोगों की सहायता हेतु सिक्ख कई मीलों की दूरी तय करके वहाँ पहुँच गये । भयंकर युद्ध हुआ परन्तु सत्य की विजय हुई । सिक्खों ने हसन खान को मृत्यु दण्ड दिया और उस ब्राह्मण स्त्री को अपनी ओर से दहेज देकर पति के घर विदा किया । इस क्षेत्र को विजय करने के उपरान्त सिक्ख दिल्ली की तरफ बढ़े । 18 जनवरी, 1774 ईस्वी को सिक्ख शाहदरे की तरफ से दिल्ली में घुस गये और वहाँ पर कुछ अमीरों को जा दबोचा। उनसे नज़राना लेकर शाही सेना से सामना होने से पूर्व तुरन्त पँजाब लौट गये ।

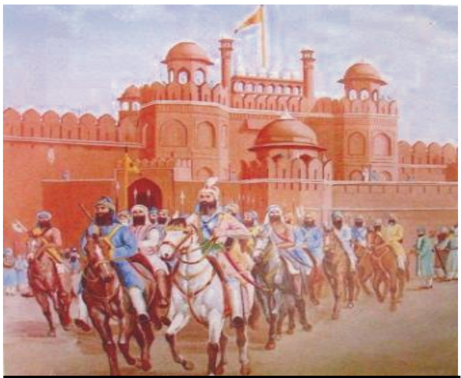

11 मार्च 1781 ई. सरदार बघेल सिंघ के नैतृत्व में खालसे की तीस हज़ारी घुड़सवार सेना ने दिल्ली के लाल किले पर केसरी निशान साहिब लहरा दिया । उस समय सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालियां दिल्ली के तख्त पर विराजमान हुए। उनकी याद में आज भी वहां पर तीस हज़ारी कोर्ट (अदालत)है ।

सन् 1775 ईस्वी में करोड़ा मिसल का स्वामी सरदार बघेल सिंह अपने अन्य साथियों के साथ बेगी घाट से यमुना पार करके 22 अप्रैल को लखनोती, गंगोह, अम्बहेटा, ननौता आदि क्षेत्रों का दमन करते हुए देवबन्द जा विराजे । वहाँ का स्थानीय प्रशासक बहुत क्रूर था और जनता पर अत्याचार करने से बाज नहीं आता था । अतः सिक्खों ने स्थानीय जनता की पुकार पर उसे परास्त कर मृत्यु दण्ड दे दिया । वहाँ की जनता की मांग पर नये प्रशासक की नियुक्ति की गई जिसने प्रति वर्ष 600 रूपये नज़राने के रूप में सिक्खों को देने स्वीकार किये ।

यहाँ से दल खालसा गौसगढ़ पहुँचे । यहाँ का वास्तविक प्रशासक नजीबुद्दौला का देहान्त 31 अक्टूबर, 1770 को हो चुका था, उसके स्थान पर उसका पुत्र जबीता खान प्रशासक था परन्तु उसने सिक्खों के उच्च कोटि के आचरण को देख सुन कर उनसे संधि कर ली और सिक्खों को पचास हजार रूपये नज़राने के रूप में दिये । वास्तव में उसने अपने पिता नजीबुद्दौला की नीति त्याग दी और सिक्खों को अपना स्थाई मित्र बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया । यहाँ से वह सिक्ख सेना के साथ मिल कर दिल्ली विजय करने चल पड़ा । 15 जुलाई, 1775 ईस्वी को सिक्ख सेना दिल्ली में प्रवेश कर गई । वहाँ जल्दी ही उनका शाही सेना से सामना हुआ, घमासान युद्ध के बाद भी कोई निर्णय नहीं हो पाया । अन्त

में सिक्ख सेना वापिस मेरठ की तरफ आ गई । दिल्ली के जरनैल नज़फ खान ने सिक्खों का पीछा किया परन्तु उसको भारी क्षति उठानी पड़ी । लक्ष्य की प्राप्ति न होती देखकर जबीता खान अपने क्षेत्र गौसगढ़ लौट गया । ऐसे में सिक्ख पुनः यमुना नदी पार करके 24 जुलाई, 1775 ईस्वी को पँजाब लौट पड़े ।

सन् 1775 ईस्वी में दिल्ली से अब्दुल अहमद ने अपने भाई अब्दुल कासिम को सहारनपुर का फौजदार नियुक्त करके जाबिता खान को दण्डित करने के लिए भेजा । इस पर जाबिता खान ने अपनी सहायता के लिए पँजाब से सिक्खों को आमन्त्रित किया । सरदार बघेल सिंह अपने अन्य सहयोगी सरदारों को साथ ले कर बुढाना नामक स्थान पर जाकर बिता खान को मिले । 11 मार्च, 1776 ईस्वी में अमीर नगर के रणक्षेत्र में घमासान युद्ध हुआ । जिसमें शाही जरनैल अब्दुल कासिम मारा गया । उसकी सेना भाग गई । मुगल सेना का शिविर सिक्खों के हाथ आया । तद्पश्चात् सिक्ख अलीगढ़, कासगंज इत्यादि से नज़राने लेते हुए जून, 1775 में पँजाब वापिस चल पड़े ।

इस प्रकार के नित्य प्रति युद्ध से परेशान होकर दिल्ली के बादशाह ने जाबिता खान को ओदश दिया कि वह सिक्खों के साथ मुगल सरकार की स्थाई संधि की कोई बात चलाएं । दोनों पक्षों में लम्बी बातचीत हुई, जिसका परिणाम सन् 1781 ईस्वी में यह हुआ कि बादशाह ने गंगा यमुना के मध्य के क्षेत्र के लगान में से आठवां हिस्सा सिक्खों को देना स्वीकार कर लिया परन्तु यह संधि अधिक समय तक न चल सकी । इस पर सिक्ख सरदार बघेल सिंह के नेतृत्त्व में पुनः यमुना पारकर गये।

इससे पहले सन् 1780 ईस्वी में दिल्ली में स्थित प्रधानमंत्री अब्दुल खान ने राजकुमार फरखंदाबख्त को राजा अमर सिंह पटियाले वाले के विरूद्ध विशाल सेना देकर भेजा तो उस समय सरदार बघेल सिंह शांत बने रहे । उन्होंने अपने क्षेत्र (जिला बरनाला) में से शाही सेना को गुजरने दिया परन्तु जब दोनों सेनाएं आमने सामने हुई, तभी उन्होंने अपनी सेना को पटियाला नरेश के पक्ष में रणक्षेत्र में भेज दी । जब राजकुमार फरखंदाबख्त ने महसूस किया कि वह चारों ओर से सिक्ख सेना से घिर गया है तब वह संधि की बातें करने लगा । इस पर बघेल सिंह ने कह दिया कि अब तो तुम्हें अन्य मिसलों के सरदारों की सेना का खर्चा वहन करना पड़ेगा, जो पटियाला नरेश की सहायता हेतु यहाँ आई हैं। विवशता में राजकुमार फरखंदाबख्त ने बहुत सा धन दिल्ली से मँगवाया और उसे मुआवजे के रूप में सिक्ख सेनापतियों को दिया और जान बचा कर लौट गया ।

सन् 1783 ईस्वी के प्रारम्भ में अधिकांश सिक्ख मिसलों ने दिल्ली के प्रशासक को कमजोर जान कर उस पर धावा करने की योजना बनाई । इन में सरदार बघेल सिंह व सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया जी प्रमुख थे। सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया जी ने दिल्ली पहुँचने सेपहले भरतपुर के जाट नरेश से एक लाख रूपये नज़राना वसूल किया । इसके उपरान्त दिल्ली नगर में प्रवेश कर गये । इस समय दल खालसा के जवानों की संख्या तीस हजार थी । मुल बादशाह शाह आलम द्वितीय उस समय सिक्खों का सामना करने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहा था, इसलिए वह शान्त बना रहा । अतः सिक्ख बिना लड़े ही दिल्ली के स्वामी बन गये । एक म्यान में दो तलवारें तो रह नहीं सकती थी । अतः बादशाह शाह आलम द्वितीय ने सिक्खों को प्रसन्न करने की समस्त चेष्टाएं की और बहुत से नज़राने भेंट किये और अन्त में एक संधि का मसौदा प्रस्तुत किया । इस संधि पत्र पर सरदार बघेल सिंह व वजीर आजम गोहर ने हस्ताक्षर किये ।

1. खालसा दल को तीन लाख रूपये हर्ज़ाना के रूप में दिये जायें।

2. नगर की कोतवाली तथा चुंगी वसूल करने का अधिकार सरदार बघेल सिंह को सौंप दिया जायेगा।

3. जब तक गुरूद्वारों का निर्माण सम्पूर्ण न हो जाये, तब तक सरदार बघेल सिंह चार हजार सैनिक अपने साथ रख सकेंगे।

इस समय दल खालसा के तीस हजार सैनिक दिल्ली में अपना विशाल शिविर बनाकर समय की प्रतीक्षाकर रहे थे। यही शिविर स्थल (दल खालसे की छावनी) बाद में तीस हजारी कोर्ट के नाम से विख्यात हुई। आजकल यहाँ तीस हजारी मैट्रो रेलवे स्टेशन है।

सरदार बघेल सिंह जी के लिए सबसे कठिन कार्य उस स्थान को खोजना था, जहाँ श्री गुरू तेग बहादुर साहिब जी को शहीद किया गया था। आपने एक वृद्ध स्त्री को खोजा जिसकी आयु उस समय लगभग 117 वर्ष थी। उसने बताया कि जहाँ नंदनी चौक में मस्जिद है, वही स्थल है, जहाँ गुरूदेव विराजमान थे और उन पर जल्लाद ने तलवार चलाई थी। उसने बताया कि मैं उन दिनों 9 वर्ष की थी और अपने पिता के साथ आई थी। मेरे पिता ने वह स्थल अपनी मश्क से पानी डालकर धोया था। यह मस्जिद उन दिनों नहीं हुआ करती थी। इसका निर्माण बाद में किया गया, इससे पहले वहां बड़ का वृक्ष था।

सरदार बघेल सिंह जी को गुरूद्वारा निर्माण कार्य में बहुत संघर्ष करना पड़ा, कहीं बल प्रयोग भी किया गया परन्तु वह अपनी धुन के पक्के थे। अतः वह अपने लक्ष्य में सफल हो गये। उन्होंने माता सुन्दर कौर, बंगला साहिब, रकाब गंज, शीश गंज, नानक प्याऊ, मंजनू टीला, मोती बाग, बाला साहिब इत्यादि ऐतिहासिक गुरूद्वारों का निर्माण करवाया। सन् 1857 ईस्वी के गद्दर के पश्चात् राजा सरूप सिंह (जींद रियासत) ने कड़े परिश्रम के बाद विलायत से स्वीकृति लेकर गुरूद्वारा शीश गंज का आधुनिक ढँग से निर्माण करवाया।

पँजाब लौटते समय बघेल सिंह जी ने अपना एक वकील (लखपतराय) दिल्ली दरबार में अपने प्रतिनिधि के रूप में छोड़ दिया।

इस वर्ष पुनः सरदार बघेल सिंह, सरदार भाग सिंह, सरदार भंगा सिंह, सरदार गुरदित सिंह आदि मिलकर यमुना पार कर गये और जाबिता खान को नज़राना न भेजने के लिए ललकारा। उससे पिछला हिसाब चुकता करके अनूप शहर के अमीरों से नज़राने वसूले। इस पर गँगा नदी के उस पार के अवधी नवाब को अपनी सत्ता डगमगाती हुई दिखाई दी। उसने तुरन्त अँग्रेजों से सहायता माँगी और नदी तट पर मोर्चा बांध कर गोलाबारी करने लगे। समय की नज़ाकत को मद्देनजर रखते हुए सिक्खों ने गँगा पार करने की योजना स्थगित कर दी। फिर दल खालसा ने अपने अपने खर्चे पूरे करने के लिए अलीगढ खुरजा, हाथरस तथा इटावा के नवाबों व अमीरों से नज़राने वसूल किये किन्तु इटावा के नवाब ईसा खान ने मुकाबला किया किन्तु पराजित होकर भाग गया। तद्पश्चात् सिक्ख विजय के डंके बजाते हुए बुलंद शहर से नज़राने वसूलते हुए पँजाब को लौट गये।

बादशाह शाह आलम के प्रधानमंत्री नजीबुद्दौला की मृत्यु सन् 1770 ईस्वी में हुई। उसका पुत्र जबता खान को मीर बख्शी पद तथा 'अमीर उल उमरा' की उपाधि से सम्मानित कर दिया गया परन्तु दरबारियों की आपसी अनबन के कारण जाबिता खान को जल्दी ही सब कुछ खो देना पड़ा, विवशता में उसने सिक्खों से सहायता मांगी।

सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया, जाट, रूहेले और बादशाह आलम

सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी दल खालसा के सेना नायक होने के कारण पँजाब से बाहर भी कई सैनिक अभियानों के लिए जाते रहे थे और उन्होंने भरपूर सफलता अर्जित की । इन सभी सैनिक अभियानों में से कुछ तथ्य उभर कर सामने आते हैं । सबसे पहले तो उन्हें दिल्ली का प्रधानमंत्री नजीबुद्दौला की उन्नति फूटी आँखों न भाती थी । इसका कारण यह था कि वह विदेशी सम्राट अहमदशाह अब्दाली का संरक्षण प्राप्त करने के लिए भारत की अपेक्षा अफगानिस्तान से अधिक प्रेम करता था । दूसरा, आहलूवालिया जी को यह पक्का विश्वास हो गया था कि सिक्ख एक नई शक्ति के रूप में उभर चुके हैं और वह पँजाब को आत्मनिर्भर तथा स्वायत शासन बनाकर देश की रक्षा के लिए सक्षम हो गये हैं । तीसरा, वह दिल्ली में भी सिक्खों का दबदबा देखना चाहते थे ताकि वहाँ के शासक मालवा क्षेत्र में सिक्खों को अपनी अपनी राजसत्ता स्थापित करने में बाधक न बनें ।

इसके अतिरिक्त आहलूवालिया जी इस बात के लिए भी उत्सुक थे कि समूह भारतवासी सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरू साहिबानों के उद्देश्यों तथा उपदेशों की तरफ आकर्षित हों ताकि इस ढँग से सिक्खों की शक्ति का सरलतापूर्वक प्रसार हो सके ।

उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी ने सबसे पहले नजीबुद्दौला से निपटना चाहा। परिणाम स्वरूप सितम्बर, 1765 ईस्वी में दल खालसा नजीबुद्दौला की ओर बढ़ चला। इस अभियान से पूर्व यह निश्चय किया गया था कि सिक्ख एक साथ दोनों ओर से नजीबुद्दौला के क्षेत्र पर धावा बोल दें, इसलिए तरूणा दल के सैनिक तो बूड़िया के नौका स्थल से यमुना को पार करके सहारनपुर क्षेत्र में प्रवेश कर गये । दूसरी तरफ बुड्ढा दल ने जस्सा सिंह जी के नेतृत्त्व में अन्य सरदारों सहित पच्चीस हजार घुड़सवार लेकर दिल्ली के उत्तरी भाग में स्थित नजीबुद्दौला की जागीरों पर धावा बोल दिया ।

ऐसा प्रतीत होता है कि वे दोनों दल केवल स्थिति को भांपने के लिए आये थे और इसी कारण शीघ्र ही दीवाली मनाने के लिए 14 अक्तूबर, 1765 को अमृतसर की ओर लौट पड़े ।

दीवाली बीतने के कुछ ही समय पश्चात् सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ने अन्य सिक्ख सरदारों सहित नजीबुद्दौला के क्षेत्रों पर दोबारा धावा बोल दिया । मुजफ्फरगढ़ के किले में शामली नामक स्थान पर सिक्खों और रूहेलों के मध्य भीषण युद्ध हुआ । उस समय नजीबुद्दौला के पास एक बड़ा तोपखाना था, किन्तु सिक्खों ने गन्ने के खेतों की आड़ लेकर गोलियों की बौछार से नजीबुद्दौला को हैरान – परेशान कर दिया। शाम तक डट कर युद्ध होता रहा ।

दूसरे दिन फिर से घमासान लड़ाई हुई । रूहेलों के विख्यात सेनापति रणभूमि में मारे गये । इस पर सिक्खों ने नजीबुद्दौला के पुत्र जाबिता खान पर धावा बोल दिया और उसे घेरे में ले लिया परन्तु नजीबुद्दौला ने तोपखाने का लाभ उठाते हुए सिक्खों के घेरे को तोड़ने में कामयाबी प्राप्त कर ली, दिन भर लड़ाई चलती रही, परिणाम न निकलने के कारण सिक्ख अंधेरे का लाभ उठाकर लौट गये ।

उसी वर्ष 22 अक्तूबर, 1767 ईस्वी को दीवाली के अवसर पर सिक्ख फिर पानीपत के क्षेत्र में जा उतरे। उनका मुकाबला करने के लिए नजीबुद्दौला फिर सेना लेकर अग्रसर हुआ परन्तु इस बार उसने महसूस किया कि सिक्खों को रोकना उसके बस में नहीं है । उन दिनों सिक्खों ने लगभग समूचे पँजाब पर अपना अधिकार स्थापित कर रखा था । उन्होंने अहमदशाह अब्दाली को भी पराजित करके वापिस लौटने पर विवश कर दिया था । अब यह निश्चित सा जान पड़ता था कि सिक्ख जल्दी ही दिल्ली

पर भी हावी होने वाले हैं । इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर नजीबुद्दौला ने सोचा कि यदि इसी तरह सिक्खों की शक्ति बढ़ती रही तो ऐसी दशा में मुगल अपनी राजधानी से भी हाथ धो बैठेंगे और मुगल शहजादों अथवा मलका जीनत महल की रक्षा करना भी उसके लिए असम्भव हो जाएगा । प्रधानमंत्री नजीबुद्दौला को ऐसी सम्भावित स्थिति का आभास हो रहा था, अतः उसने अपनी लाचारी की सूचना इलाहबाद में विराजमान शाह आलम द्वितीय को इस प्रकार भेजी ।

उसने पत्र में निम्नलिखित विचार प्रकट किये । मैंने अब तक नौजवान शहजादों एवँ राजमाता की पूरी लग्न एवं निष्ठा से सेवा की है किन्तु अब उनकी रक्षा के लिए जितने साहस की आवश्यकता है, वह मेरे पास नहीं रही है, इसलिए हजूर को राजधानी पधार कर अपनी रक्षा स्वयं करनी चाहिए । दास की ओर से हजूर के समक्ष स्पष्ट शब्दों में प्रार्थना है कि वह अब बदली हुई परिस्थितियों में उनकी सेवा के अयोग्य हो गये हैं ।

नजीबुद्दौला ने इसी आशय का एक पत्र राजमाता जीनत महल को भी लिखा कि वह दिल्ली की रक्षा करने में असमर्थ है । यदि वह चाहे तो उन्हें शाही खानदान अन्य सदस्यों के पास, बादशाह शाह आलम के पास इलाहाबाद स्थानांतरित कर दें क्योंकि अब सिक्ख इतना जोर पकड़ चुके हैं कि वह स्वयं अपनी जान बचाने में सक्षम नहीं रह गया है । अतः उसकी इच्छा है कि वह राजनीतिक जीवन से सन्यास लेकर मक्का अथवा किसी एकांत स्थान में शरण लेकर अपनी आयु के शेष दिन व्यतीत करे ।

यह पत्र लिखने के कुछ ही दिनों बाद नजीबुद्दौला ने अपने पुत्र जाबिता खान के सिर पर पगड़ी बांधकर अपनी जीवित अवस्था में ही उसे अपने राजनीतिक एवँ सामाजिक अधिकारों को सौंप दिया । उसने जाबिता खान को बाहरी शक्तियों से निपटने की भी पूरी तरह छूट दे दी और उसे यह भी निर्देश दिया कि किसी अन्य से परामर्श लिए बिना अपनी इच्छानुसार सिक्खों से युद्ध अथवा समझौता करके फैसला कर सकता है । नजीबुद्दौला ने दिल्ली स्थित नायब सुलतान खान को वापिस बुला लिया । ऐसे में जाबिता खान ने लहारी तथा जलालाबाद में तुरन्त सिक्खों से संधि कर ली ।

नजीबुद्दौला के इस्तीफे से इलाहाबाद स्थित शाह आलम की चिन्ता बढ़ गई । उसकी माता तथा उत्तराधिकारी को अब कौन बचाएगा, वह इस दुविधा में पड़ा हुआ था । यदि वह अपने परिवार को इलाहाबाद में बुला ले तो हरियाणा एवँ पँजाब के लगभग सभी क्षेत्रों में प्रभुत्व स्थापित कर चुके सिक्ख बिना किसी बाधा के दिल्ली में आ घुसेंगे । तब उन्हें वहाँ से निकालना बड़ा दुष्कर कार्य होगा । वह समझ रहा था कि यदि सिक्खों ने एक बार दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तो वह दिल्ली की गलियों में भटकते हुए हज़ारों मुगल शहजादों से किसी एक की पीठ थपथपा कर उसे सिंहासन पर बैठा देंगे । तदनन्तर वे उसके नियमित रूप से बादशाह के पद पर आसीन होने की घोषणा करके अपने पिठ्ठू बादशाह के नाम पर मुगल साम्राज्य को हथिया लेंगे । इन सभी मनोवेगों के कारण शाह आलम सदा परेशान रहता था ।

जस्सा सिंह आहलूवालिया का पत्र शाह आलम के नाम

अस्थिरता एवँ मानसिक तनाव में फँसे शाह आलम को सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ने एक पत्र लिखा । यह पत्र सन् 1768 ईस्वी की जनवरी में लिखा गया प्रतीत होता है । इसमें आहलूवालिया जी ने शाह आलम से आग्रह किया था कि यदि वह दिल्ली लौट आये तो सारी राज्य व्यवस्था उसे फिर से प्राप्त हो जायेगी ।

इसके उत्तर में शाह आलम ने अपने दूतों द्वारा कहलवाया कि वह सदा दिल्ली पहुँचने की बात सोचता रहता है किन्तु यह तभी सम्भव है यदि जस्सा सिंह आहलूवालिया अपने अन्य सरदारों सहित उसका साथ दें। इस प्रकार राज्य में शान्ति स्थापित हो जाएगी और उसके शत्रु घबरा जाएंगे किन्तु मैं इस बात से परेशान हूँ कि सिक्ख सरदार संगठित नहीं हैं और लगभग प्रतिदिन एक न एक सरदार की तरफ से नई चिट्टी आ जाती है। ऐसी चिट्ठियों की सँख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है, इसलिए सिक्ख सरदार एकत्रित होकर एक शक्तिशाली संगठन बनाएं और तब एक साँझा आवेदन भेजे, जिस पर सभी सिक्ख सरदारों की मोहरें लगी हों। ये बातें गोपनीय बनी रहें। अतः आप अपने किसी विश्वास पात्र को मेरे पास भेज दो। तदनन्तर मैं सेना सहित दिल्ली के समीप पहुंच कर और आपको साथ लेकर राजकाज सम्भाल लूंगा।

इस पत्र व्यवहार से ज्ञात होता है कि सरदार जस्सा सिंह जी का यह पत्र केवल व्यक्तिगत ही था। इस सम्बन्ध में खालसा पंथ का कोई गुरमता पारित नहीं हुआ था क्योंकि भिन्न भिन्न सरदारों के पत्रों का भावभी लगभग एक जैसा ही था। इसी कारण शाह आलम ने सुलतान उल कौम सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी से निवेदन किया था कि पंथ की ओर से एक संयुक्त पत्र लिखा जाये।

इन्हीं दिनों नजीबुद्दौला को मराठा सरदार तकोली होलकर से संधि करने का अवसर प्राप्त हो गया। वह अपने पुत्र जाबिता खान का हाथ तकोजी को थमा कर, 31 अक्तूबर, 1770 ईस्वी को परलोक सिधार गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् शाह आलम की घबराहट और अधिक बढ़ गई। शाह आलम सन् 1770 ईस्वी में अँग्रेजों के संरक्षण में था, किन्तु वे उसे दिल्ली पहुंचाने में असमर्थ थे, जाटों और राजपूतों से भी उसे अपनी इच्छापूर्ति की अधिक सम्भावना न थी। इन दिनों सिक्ख भी अपने कार्यों में अत्याधिक व्यस्त थे। ऐसी परिस्थितियों में शाह आलम ने सन् 1771 ईस्वी में मराठों से सांठ–गांठ कर ली और वह 10 अप्रैल, 1771 ईस्वी को इलाहाबाद से चलकर 6 जनवरी, 1772 को दिल्ली पहुँच गया।

जाबिता खान और सिक्ख

शाह आलम ने शीघ्र ही जाबिता खान को उसके पिता वाले पद 'मीर बख्शी' तथा 'अमीर उल उमरा' की उपाधि से सम्मानित कर दिया किन्तु कुछ ही दिनों बाद मराठा सरदार महा जी सिंधिया के भय के कारण जाबिता खान को अवध के नवाब शाह शुजा–उद्दौला के यहाँ शरण लेनी पड़ी। जल्दी ही शाह शुजा–उद्दौला ने दोनों पक्षों में संधि करवा दी। सन् 1773 ईस्वी में दरबारियों के आपसी मतभेद के कारण बादशाह के सलाहकार अब्दुल अहमद ने अपने भाई कासिम खान को जाबिता खान के स्थान पर सहारनपुर का फौजदार नियुक्त करवा दिया और उसने कासिम खान को जाबिता खान पर आक्रमण करने का आदेश भी दिया। ऐसे संकट काल में जाबिता खान ने सिक्खों से सहायता की प्रार्थना की। भाई देशा सिंह कैथल वाले उसकी सहायता को पहुँचे, इसके फलस्वरूप 4 मार्च, 1776 ईस्वी को अब्दुल कासिम खान मारा गया। इस घटना से अब्दुल अहमदशान आगबबूला हो उठा। उसने अगले वर्ष सन् 1777 ईस्वी में नज़रखान के नेतृत्त्व में जाबिता खान पर भारी शाही सेना गौसगढ़ पर आक्रमण करने के लिए भेजी। इस पर जाबिता खान ने फिर से सिक्खों से सहायता के लिए प्रार्थना की। इस बार शाह आलम भी शाही सेना के साथ था। सिक्ख अपने वचन अनुसार समय पर पहुँचे, घमासान का युद्ध हुआ। इस युद्ध का अधिकांश भार सिक्खों को ही सहन करना पड़ा। 8, 11, 13 तथा 23 जून

को नज़फ खान ने भी आक्रमण किये परन्तु सिक्खों ने उसके सभी आक्रमण विफल कर दिये । एक दिन सिक्खों ने कृष्णा नदी को पार करके थाना भवन के निकट मुगल सेना पर धावा बोल दिया, सिक्ख सैनिक पंक्तियों को चीरते हुए बादशाह के तम्बुओं के समीप जा पहुँचे किन्तु मूसलाधार वर्षा के कारण सिक्ख लक्ष्य को प्राप्त न कर सके और लौटने पर विवश हो गये ।

मुगल सेना ने विजय की सम्भावना न देखते हुए कूटनीति का सहारा लिया और तुरन्त संधि करने की पेशकश की । संधि का मसौदा तैयार होने पर सिक्ख वापिस लौट गये । इस पर मुगल सेनानायक नज़फ खान ने छल किया, उसने जाबिता खान के समर्थक उरवजाई पठानों को लालच देकर खरीद लिया और 14 सितम्बर को पुनः आक्रमण करके जाबिता खान को परास्त करके गौसगढ़ पर विजय का झण्डा लहरा दिया । उन्होंने जाबिता खान के परिवार और उसके साथ रूहेले सरदारों के परिवारों को पकड़ कर आगरा के किले में कैद कर दिया । तब जाबिता खान किसी तरह जान बचा कर सहायता के लिए जींद के राजा गजपति सिंह के पास शरण लेने पहुँचा । उस समय सिक्खों ने शरणागत जाबिता खान की भरपूर सहायता की । इस अतिथि सेवा एवं मैत्री भाव का उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा और परिणाम स्वरूप जाबिता खान ने अमृत छक लिया और उसका नाम धर्म सिंह रख दिया गया ।

कुछ समय पश्चात् राजा गजपति सिंह व दल खालसा के सेनानायक जस्सा सिंह आहलूवालिया जी ने दिल्ली सम्राट शाह आलम से उसकी संधि करवा दी । परिणामस्वरूप जाबिता खान के सम्बन्धि यों को रिहा कर दिया गया और उसे गौसगढ़ तथा लूटा हुआ सारा माल वापिस दे दिया गया ।

जिन दिनों जाबिता खान ने अमृत पान किया, उस समय उसका बेटा गुलाम कादर 11 वर्ष का था । भावुकता में उसने भी सिक्खी धारण की, उसका नाम प्यारा सिंह रखा गया परन्तु पँजाब से लौटने पर उसे सिक्ख वातावरण में जीवन व्यतीत करने अथवा सिक्ख सिद्धान्तों पर आचरण करने का अवसर प्राप्त न हुआ । गुरमत का उचित ज्ञान न होने के कारण, वह अपने पुराने सँस्कारों का ही प्रदर्शन करता रहा ।

जस्सा सिंह आहलूवालिया और जाट

दिसम्बर, 1764 ईस्वी तथा फरवरी, 1765 में मध्यवर्ती समय में नजीबुद्दौला का विरोध करने के लिए सरदार जस्सा सिंह आहलुवालिया ने भरतपुर नरेश जवाहर सिंह को सहायता प्रदान की थी। इस घटना का विवरण पिछले अध्यायों में आ चुका है। जनवरी, 1766 में जवाहर सिंह ने फिर एक बार स० जस्सा सिंह आहलूवालिया जी से सहायता की याचना की, किन्तु इस बार जवाहर सिंह की टक्कर मराठों से थी, जो भरतपुर के क्षेत्र में लूटपाट करने पर तुले हुए थे ।

सिक्खों ने जवाहर सिंह को सहायता प्रदान करने के लिए स्वीकृति दे दी। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ने शाम सिंह, भाग सिंह, गैबा डेलेवालिया तथा अन्य कुछ सिक्ख सरदारों के साथ 25 हजार घुड़सवार सेना लेकर रियासत जयपुर के रिवाड़ी नगर पर अधिकार कर लिया। इसके कुछ समय बाद कोट पुतली शहर की ईंट से ईंट बजा दी गई। उस समय जयपुर का बख्शी दुला राय और खाल–ए समान जयचन्द कन्नौड़ गए हुए थे। सिक्खों ने सभी आठों मार्ग रोक लिए। माधो सिंह में सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी से टक्कर लेने का साहस न था जिसके कारण वह घबरा गया।

वास्तव में जस्सा सिंह जी ने एक विशेष रणनीति के अन्तर्गत जयपुर पर आक्रमण किया था कि जब मराठे अपने मित्र माधो सिंह की सहायता के लिए आएंगे तो सम्भवतः उनका ध्यान भरतपुर के क्षेत्रों से हट जाएगा। जाविता खान (धर्म सिंह) भी इस संदर्भ में आहलूवालिया जी से सहमत था,

इसलिए दोनों पक्षों की सेनाओं ने मिलकर जयपुर नगर को परास्त कर दिया। इस पर माधो सिंह ने लाचार होकर कहा, हमारे पूर्वजों की आसाम के युद्ध में श्री गुरू तेग बहादुर साहिब जी ने सहायता की थी। अतः हम सिक्ख हैं, ऐतिहासिक घटना की गुहार लगाकर सिक्खों से क्षमा याचना माँगते हुए संधि का प्रस्ताव रखा। जिसे सरदार जस्सा सिंह जी ने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

बदली हुई परिस्थितियों को ध्यान में रख कर जवाहर सिंह ने नवल सिंह को मध्यस्थ बनाकर राजा माधो सिंह से संधि कर ली।

वहाँ से दल खालसा, राजा जवाहर सिंह के साथ राजा गोहट की सहायता के लिए सन्, 1766 ईस्वी के मार्च महीने में जा पहुँचे। राणा गोहट एक जाट था और इसी कारण जवाहर सिंह ने मराठों के विरूद्ध उसकी सहायता करने का वचन दिया था।

भरतपुर का राजा बनने का दावा करने वाला, जवाहर सिंह का भाई नाहर सिंह मराठों से मिला हुआ था। नाहर सिंह की शह पर मराठा सरदार होलकर ने अपने प्रतिष्ठित सेनापतियों के नेतृत्त्व में 15,000 मराठा घुड़सवारों को गोहट के क्षेत्र में भेज दिया था। इन सैनिकों ने धौलपुर से लेकर डीघ और आगरे की चार दीवारी तक के सभी जाट गाँवों को उजाड़ दिया था। तब सात हजार सिक्ख सैनिकों को साथ लेकर राजा जवाहर सिंह अपनी प्रजा की सहायता के लिए पहुँच गया और उसने 13 मार्च को धौलपुर के निकट मराठों को जा ललकारा।

सिक्खों के दाँव पेच के सामने मराठों की दाल गलने न पाई। जब मराठे लड़ने के लिए आये तो सिक्ख पीछे हट गये। मराठों ने समझा कि सिक्ख डर कर भाग गए हैं, किन्तु सिक्ख अपने सुनियोजित स्थान पर थे। जब मराठे और आगे बढ़े तो सिक्ख एकदम मुड़ गए और उन्होंने दाएं बाएं ओर से उन्हें घेरकर बंदूकों से आक्रमण कर दिया। बीच से जाटों ने भी मराठों को गोलियों से भून डाला। बेबस होकर मराठा सैनिकों ने धोलपुर के किले में शरण ले ली किन्तु सिक्ख उनके पीछे ही भागते हुए किले में घुस गए। कुछ ही झड़पों के बाद सिक्खों ने किले पर अधिकार कर लिया और बहुत से मराठों सेनापतियों को बन्दी बना लिया।

राजा जवाहर सिंह का मन था कि चंबल नदी पार करके मलहार राव 'मराठे' को भी मजा चरवाया जाए किन्तु जस्सा सिंह आहलूवालिया और उसके साथी अमृतसर पहुँच कर वैशाखी पर्व मनाने के लिए उतावले थे। जवाहर सिंह ने उन्हें बड़े सम्मान पूर्वक विदा कर दिया। दल खालसा की इस कार्यवाही से जाट, सिक्खों का अत्यन्त आदर करने लगे और इस बात की चर्चा मराठों में भी होने लगी।

करतारपुर के सोढ़ियों की सिक्ख पंथ में पुनर्स्थापना

मीने (पृथीचन्द की संतान) और मसंदो (पुजारी वर्ग) की भान्ति करतारपुर के शेखीखोर सोढी बाबा धीरमल के अनुयायियों के साथ भी सिक्खों ने सामाजिक दृष्टि से सम्बन्ध विच्छेद कर रखा था। धीरमल के परिवार से रोटी–बेटी का सम्बन्ध अथवा किसी भी प्रकार का लेन–देन गुरूपंथ के आदेशों का उल्लंघन माना जाता था।

करतारपुर का सिंहासनारूढ़ सोढ़ी बड़भाग सिंह तो पहले ही अमृत छक कर खालसा पंथ का अंग बन चुका था किन्तु उसके वंशज गुलाब सिंह ने अभी तक अमृत नहीं छका था, फिर भी गुलाब सिंह को सिक्खों की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा के कारण यह आभास होने लगा था कि अब उसका अलग–थलग रहना उचित न होगा, इसलिए गुलाब सिंह ने कंवर भाग सिंह से प्रार्थना की कि वह करतारपुर में दर्शन

देकर उसका आतिथ्य स्वीकार करे। भाग सिंह ने सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया से परामर्श किया। आहलूवालिया जी ने अन्य सरदारों की सहमति लेकर गुलाब सिंह को यह संदेश भिजवाया कि अमृत छकने के अतिरिक्त सिक्ख पंथ में सम्मिलित होने का और कोई उपाय नहीं है।

गुलाब सिंह ने यह शर्त स्वीकार कर ली। इसके फलस्वरूप स० जस्सा सिंह आहलूवालिया, टिक्का, भाग सिंह और अन्य सरदार करतारपुर पहुँच गए। एक विशाल दीवान सजाया गया, जिसमें उन्हें अमृत छकाया गया। वहीं पर यह घोषणा भी की गई कि क्योंकि सरदार गुलाब सिंह ने अमृत धारण कर लिया है। अतः वे गुरू के सेवक बन गए हैं। अब उन्हें पूर्व की तरह खालसा पंथ में अभेद (अटूट अंग) माना जाएगा। 'खालसा' इन से अब पुनः सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

रामगढ़ियों से मतभेद

सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी के जीवन के अन्तिम दिनों में एक दुःखान्त घटित हुआ, जिस से उनका जस्सा सिंह रामगढ़िया उनके भाइयों से मतभेद हो गया। एक बार सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी बटाला से लगभग दो कोस दक्षिण में अचल की तरफ जा रहे थे, यहाँ फाल्गुन शुदि चतुर्दशी को मेला लगना था। जब वह गुरदासपुर के निकट पहुँचे तो सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया के भाइयों, खुशहाल सिंह, माली सिंह और भाग सिंह ने उन पर आक्रमण करके उन्हें बंदी बना लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी अकेले ही थे।

इन रामगढ़िया भाइयों का जस्सा सिंह के साथ एक पुराना मन मुटाव चला आ रहा था। जिसका शायद बड़ा कारण यह था कि कसूर नगर की लूट के समय मिसलों के रिवाज के विपरीत माली सिंह रामगढ़िया ने लूट का सारा माल हथिया लिया था और कन्हैया मिसल को उसमें से कोई भाग नहीं दिया था। कन्हैया मिसल के जय सिंह के रोष प्रकट करने पर जस्सा सिंह रामगढ़िया ने अपने भाई माली सिंह को समझाया–बुझाया भी, परन्तु वह नहीं माना। इस पर यह शिकायत दल खालसा के अध्यक्ष सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी के पास पहुँची। उन्होंने दल खालसा की ओर से माली सिंह पर दबाव डाला कि वह लूट के माल का बँटवारा उचित ढँग से करे परन्तु माली सिंह टस से मस न हुआ। इस बात को लेकर आपसी मतभेद उत्पन्न हो गया था।

जब जस्सा सिंह रामगढ़िया को इस घटना की सूचना मिली तो उन्होंने सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी को सिरोपा, घोड़ा और पालकी भेंट करके विदा किया। भले ही सरदार जस्सा सिंह रामगढ़िया ने दूरदर्शिता के कारण स्थिति को सम्भाल लिया था, फिर भी मन की मैल पूरी तरह नहीं उतरी।

यह घृणा धीरे धीरे बढ़ती गई। आहलूवालिया, कन्हैया और रामगढ़िया सरदारों के बीच खुले आम झड़पें होने लगी। फलतः रामगढ़िया सरदार अपने रिआडकी तथा दुआबा के क्षेत्रों को छोड़ने के लिए विवश हो गये और कुछ समय तक महाराजा पटियाला के पास आश्रित रहे।

दल खालसा के अध्यक्ष सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी का देहान्त

सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी प्रत्येक दीवाली और वैशाखी के शुभ अवसर पर दरबार साहिब के दर्शन स्नानार्थ अवश्य ही जाया करते थे क्योंकि उस दिन वहाँ पर अक्सर 'सरबत खालसा' सम्मेलन का आयोजन किया जाता था। एकत्रित संगत में पिछली छःमाही के कारनामों अथवा गतिविधियों का ब्यौरा दिया जाता था और आगामी छः मास के लिए कार्यक्रम तैयार किये जाते थे।

सन् 1783 ईस्वी तदानुसार संवत 1840 विक्रमी की कार्तिक मास में सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी दीवाली मनाने के लिए फतेहाबाद की ओर प्रस्थान कर रहे थे। रास्ता लम्बा होने के कारण उन्होंने सुंडाला नामक ग्राम में विश्राम किया। वहाँ उन्होंने कुछ तरबूज खा लिए। उन्हें रास्ते भर पेट – दर्द होता रहा। अमृतसर पहुँचने तक यह उदर पीड़ा इतनी बढ़ गई थी कि वह निढ़ाल हो गये। बहुत से उपचारों के बावजूद जब आहलूवालिया जी की हालत में कोई सुधार न हुआ तो उनके अंतरंग महानुभावों ने सभी सरदारों को बुलाकर कहा कि अब इनका अन्तिम समय समीप आ गया है। अब इनका ध्यान किसी ओर आकृष्ट न किया जाए, कोई भी दुनियादारी की बात इनके कानों तक न पहुँचे। सारा समय गुरवाणी पढ़ने और सुनने में लगाया जाए।

संयोगवश सभी सरदार दीवाली के शुभ अवसर पर अमृतसर में एकत्रित थे। सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया जी ने उन्हें सम्बोधन किया कि 'आप सब ने मुझे बहुत प्यार दिया है। मेरे जैसे नाचीज (तुच्छ व्यक्ति) को पातिशाह (बादशाह) बनाया, यह पंथ की गरीब – निवाजी है। मेरी एक ही विनती है कि कोई भी स्त्री पुरूष मेरे शव के साथ आँसू न बहाए। सभी लोग 'वाहेगुरू! वाहेगुरू! ही कहते जाएँ। अन्तिम सँस्कार नवाब कपूर सिंह जी की समाधि के समीप बाबा अटल साहिब जी के भवन के निकट ही करना।'

सभी सिक्रव सरदारों ने उन्हें वैसा ही करने का भरोसा दिलवाया। इस प्रकार 20 अक्तूबर, 1783 ईस्वी को उनका देहावसान हो गया।

कौम ने सरदार साहिब के अन्तिम आदेश का पूर्णतः पालन किया। सभी सरदारों और श्रद्धालुजनों ने केवल पुष्प वर्षा करके श्रद्धाजंलि अर्पित की और किसी ने भी आँसू नहीं बहने दिये किन्तु अंत्येष्टि के बाद कोई भी व्यक्ति विरह के कारण अपनी अश्रुधारा को रोक न सका, मानों सद्भावनाएं अश्रुओं का अथाह सागर बन कर उमड़ आया हो। सभी लोगों के मुख पर एक ही बात थी – श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के द्वारा लगाए गए बाग 'खालसा पंथ' को बाबा बंदा सिंह और कपूर सिंह जी के बाद इन्होंने (सरदार जस्सा सिंह) इस प्रकार हरा – भरा किया है कि इसकी सुगन्ध पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक फैल गई है।

इस प्रकार पँजाब का महान सपूत, सृजनात्मक प्रतिभा के स्वामी, महान योद्धा, अद्वितीय शासक और सिक्रव आदर्शों का संरक्षक, पँजाब को विदेशी शासन से मुक्ति दिलवा कर अकाल पुरख – वाहे गुरू की गोद में जा विराजमान हुआ।

एकमात्र बुड्ढा सरदार, जत्थेदार श्याम सिंह

यह वह समय था जब सभी पुराने जत्थेदार शहीद हो चुके थे अथवा स्वर्गवास हो चुके थे। केवल सरदार श्याम सिंह नारलेवाला जीवित थे। इसने बंदा सिंह बहादुर का चड्ढ़ीकला वाला समय भी देखा था और उसके बाद जो कठिनाइयाँ सिक्रव पंथ पर आई थी, वे सब इन्होंने अपने तन पर झेली थी। सरदार श्याम सिंह दस बारह हज़ार सिक्रव जवानों की सेना का नेतृत्त्व करते थे। इन्होंने सिक्रवों का दृढ़ निश्चय एवँ अडोलता देखी थी और फिर अपनी आँखों से मुगलों का राज्य नष्ट होते हुए भी देखा। डेढ़ लाख खालसे में से 40,000 घुड़सवार सिक्रव जवानों ने दिल्ली पर आक्रमण किया, जिनका जत्थेदार इनकी मिसल का सरदार बघेल सिंह चुमालिया था। खालसे ने दिल्ली पर कब्जा किया और काशगंज तक सारे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। यहीं बस नहीं चन्दोली तक चले गये परन्तु किसी ने सामना न किया।

प्रत्येक नज़राना लेकर उपस्थित होता रहा। यह सब कुछ सरदार श्याम सिंह ने अपनी आँखों से देख लिया और अन्त में वह सन् 1777 ईस्वी में बिंझलपुर में दल खालसों को अलविदा कहकर गुरूपुरी जा विराजे।

इस प्रश्न का उत्तर कि मुसीबत के समय खालसे का कर्त्तव्य क्या होता है ? सरदार श्याम सिंह का जीवन ही स्पष्टीकरण कर रहा है। खालसा मुसीबतों से कभी डरा नहीं, मुसीबत के समय खालसे का दिल कभी डोला नहीं। हजारों सिक्ख शहीद करवा कर भी खालसा अडोल, अविचलित रहा, खालसे का निश्चय है कि मुसीबत आती है और चली भी जाती है परन्तु जो सच्चे आदर्श का सहारा लेकर इस कठिनाई को झेल लेते हैं, वे अपने मनोरथ में अवश्य कामयाब होते हैं। सिक्ख इतिहास बताता है कि किसी वस्तु की प्राप्ति कुर्बानी के बिना नहीं होती और कुर्बानी जितनी बड़ी होगी, इसके बाद सफलता भी उतनी ही शानदार होगी ।

सिक्ख का जीवन सब से पहले धार्मिक जीवन है और पारिवारिक अथवा व्यवहारिक जीवन इसके बाद में है। कोई लालच, रौब या भय सिक्ख को अपने धार्मिक जीवन से उन्मुख नहीं कर सकता, सिक्खों का यह निश्चय है कि धर्म हेतु जितने कष्ट सहन किए जाएं उतना ही उनका भाग्य अच्छा है। सिक्ख की सबसे बड़ी लालसा सतगुरू के चरणों में स्थान प्राप्त करने की है और यह सिक्खों का निश्चय है कि धर्म की खातिर दुःख सहन करने से सतिगुरू के चरणों की समीपता शीघ्र प्राप्त होती है। यहाँ तक कि जो सिक्ख धर्म हेतु शीश बलिदान करते हैं, वे सीधे ही सतिगुरू के दरबार में पहुँच जाते हैं।

सिक्खों को स्वर्ग का लालच नहीं सिक्खों को मोक्ष का लालच नहीं, लालच है तो केवल यह कि इस शरीर को छोड़ कर सतिगुरू जी के चरणों में निवास मिले। सिक्ख इसी के लिए नितनेम करता है, धर्म की कमाई करता है, बाँट कर खाता और वाहे गुरू को प्रत्यक्ष सर्वव्यापक मानकर इस दुनिया में अनेक कुकर्मों से बचता है। इतना कुछ करने के उपरान्त भी सिक्ख यह नहीं समझता कि मैं अवश्य ही सतगुरू जी के दरबार में पहुँच सकूंगा अपितु उसका निश्चय है कि –

लेखै कतहि न छुटीऐ, खिनु खिनु भूलनहार।
बखशनहार बख्श लै, नानक पारि उतार ।

वास्तव में प्रत्येक सिक्ख की मान्यता है कि गुरू जिस पर रीझता है, वह उस से सेवा लेता है अर्थात उसकी परीक्षा लेता है और उसे कठिन कार्य त्याग और बलिदान के कर्म सौंप देता है, जो दृढ़ता से धर्म के लिए दुःख सहन कर लेता है और विचललित नहीं होता, वह सिक्ख सीधे ही गुरू दरबार में पहुँच जाता है। प्रत्येक सिक्ख की आँखों के सामने आवागमन से राहत, अमर जीवन का दृश्य दृष्टिगोचर होता है।

इस दरबार (आध्यात्मिक दुनिया) में हर कोई नहीं पहुँच सकता। इस मानव समाज में रह कर कोई व्यक्ति पूर्ण पुरूष नहीं बन सकता। वहाँ सम्पूर्ण हुए बिना प्रवेश नहीं मिल सकता परन्तु एक युक्ति सहज है, वह यह है कि परोपकार के लिए अथवा अत्याचारों के विरोध में संघर्षरत होकर आत्म बलिदान कुर्बानी देना, यह कार्य उस दरबार में सीधा प्रवेश दिलवाता है। इस सहज मार्ग को सिक्ख अपनाने के लिए व्याकुल रहते हैं और प्रत्येक क्षण किसी ऐसे अवसर की तलाश में रहते हैं, जहां उन्हें अपने प्राणों की आहुति देकर कोई धर्मार्थ कार्य की सिद्धि की आशा हो।

शायद यही कारण है कि सिक्ख इतिहास में शहीदों की कतारें लगी हुई हैं, क्योंकि इन शहीदों का लक्ष्य गुरू दरबार में प्रवेश इस सहज मार्ग से प्राप्त करना रहा है।

तभी तो सिक्ख, धर्म हेतु बलिदान करने के समय का व्याकुलता से प्रतीक्षा करता रहता है और जब उसे कोई ऐसा अवसर मिल जाता है तो उसे मुँह मांगी मुराद समझ कर बहुत चाव के साथ गले लगाता है। ऐसी स्थिति में वह हानि लाभ का विचार नहीं करता और न ही भूत भविष्य की सोचता है। प्रत्येक सिक्ख की यही एक इच्छा होती है कि सबसे पहले उसकी बारी आए और उसका शीश उत्तरे जो वह गुरू चरणों में भेंट कर सके। उसे यह दुनिया नज़र नहीं आती। उसे सतिगुरू का दरबार दिखाई देता है। वह इस दरबार में पहुँचने को उत्सुक रहता है, इसलिए वह सबसे पहले सिर न्यौछावर करने को लालायित दिखाई देता है ।

गुरमता व केन्द्रीय सिक्ख संगठन

श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के पश्चात् मानवी गुरूओं का क्रम समाप्त हो गया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व को खालसा पंथ में मिला दिया। अब खालसा पंथ ही गुरू का स्वरूप बन गया। जिन नियमों को गुरूदेव जी स्वयं निभाते थे, अब सारी खालसा जाति या खालसा पंथ ही निभाने लगा। श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के ज्योति विलीन होने के बहुत समय के पश्चात् जब सिक्खों ने फिर से शक्ति पकड़ी तो सारे सिक्ख सरदार प्रायः वैशाखी और दीवाली के अवसरों पर अमृतसर एकत्रित होते और सारी सिक्ख कौम (सम्प्रदाय) के सम्बन्ध में आगामी कार्यक्रम विचारते। जो निर्णय वे करते वह सभी प्रस्ताव गुरूमता कहलाता। इस प्रकार उसे व्यवहारिक रूप देने के लिए सभी मिलकर प्रयास करते ।

गुरमति दो पँजाबी शब्दों से बना है 'गुरू और मति'। गुरू के अर्थ हैं आध्यात्मिक या धार्मिक नेता और मति का अर्थ है गुरू का आदेश अथवा उनके विचारों का अध्यादेश। जैसा कि पहले वर्णन किया गया है कि दूर प्रदेशों से श्रद्धालु सिक्ख प्रायः दीवाली, वैशाखी अथवा गुरूपर्वों पर ही आते और श्री अकाल तख्त के समक्ष गुरू गद्दी पर विराजमान गुरू ग्रंथ साहिब के सम्मुख होकर समस्त सिक्ख समुदाय के बारे में आगामी कार्यक्रम पर विचार विमर्श करते। सिक्ख समुदाय के इन सारे होने वाले अधिवेशनों को 'सरबत खालसा' कहा जाने लगा और 'सरबत खालसा' के निर्णयों को प्रस्ताव अथवा गुरूमता का नाम दिया गया। धीरे धीरे यही गुरमता एक दृढ़ सम्प्रदायिक सँस्था के रूप में परिणत हो गया। ये निर्णय या प्रस्ताव जो कि श्री गुरू ग्रन्थ साहब के समक्ष पारित किये जाते थे, गुरूमता कहलाने लगे।

गुरूमता का सबसे प्रथम कर्त्तव्य सिक्ख मिस्लों के या दल खालसा के नेता का चुनाव करना था। यह चुनाव बहुमत के आधार पर होता। सारी सिक्ख सेना का नाम 'दल खालसा' था। सामाजिक जीवन में सारे सिक्ख समान थे। सरबत खालसा के अधिवेशन में हर व्यक्ति को अपना मत देने का अधिकार था। सारे निर्णय बहुमत से हुआ करते थे। 'सरबत खालसा' अपने संयुक्त शत्रु के विरूद्ध सेनाएं भेजने के सम्बन्ध में सोचविचार करता। कभी कभी वे परस्पर मिला करते और सिक्ख धर्म के प्रचार के लिए उपाय सोचते। कभी वे विभिन्न सिक्ख सरदारों के झगड़ों और निजी द्वेषों को समाप्त करने के सम्बन्ध में भी सोचते। गुरूमता न्याय का काम भी करता और सरदारों की परस्पर सम्पत्ति और पैतृक अधिकारों के झगड़ों का निर्णय भी किया करता। जब सिक्ख आपस में मिलते तो सामूहिक समाज में अपने निजी द्वेषों को भूल जाते। सरबत खालसा का प्रथम अधिवेशन गुरू गोबिन्द सिंह जी ने बुलाया था और अन्तिम अधिवेशन महाराजा रणजीत सिंह ने सन् 1805 ईस्वी में बुलाया था।

जब सिक्ख सरदार अमृतसर में कुछ एक धार्मिक अवसरों पर परस्पर मिलते तो यही समझा जाता कि उनमें आपसी झगड़े और मतभेद बिल्कुल हैं ही नहीं और प्रत्येक सरदार अपने अपने स्वार्थों तथा

लक्ष्यों को समस्त सिक्ख सम्प्रदाय पर न्योछावर करने को तत्पर हैं। दूसरे शब्दों में वे देशभक्ति की भावनाओं में मग्न होकर अपनी धार्मिक भलाई और सरबत खालसा की भलाई के अतिरिक्त और किसी चीज़ का विचार न करते थे।

जब बड़े बड़े सिक्ख सरदार और मिस्लदार गुरू ग्रन्थ साहिब अथवा दसवीं पातिशाही के समक्ष एकत्रित होते तो कहते, 'वाहि गुरू जी का खालसा, वाहि गुरू जी की फतेह'। इसके बाद सभी उपस्थितगण प्रार्थना (अरदास) करके अपने अपने स्थान पर बैठ जाते। बाद में 'कड़ाह प्रसाद' बांटा जाता और सब लोग उसे खाते (छकते), जिससे पता चलता कि वे सब एक ही हैं और उनमें पूर्ण एकता और संगठन है। ग्रन्थी सिंह अथवा मुख्य सेवादार उठकर गुरूमते का प्रस्ताव सभी आये हुए गणमान्य व्यक्तियों के सुझावों के अनुसार तैयार करता और फिर इस प्रस्ताव पर समस्त सिक्ख विचार विमर्श करते, अन्त में इस प्रस्ताव के पक्ष में अथवा संशोधन के लिए निर्णय मांगे जाते, तत्पश्चात एक सुधरा हुआ स्वरूप तैयार कर लिया जाता, उसकी स्वीकृति के लिए दोबारा श्री गुरू ग्रन्थ साहिब के समक्ष प्रार्थना की जाती, उसके पश्चात् 'गुरूमता' मुख्य सेवादार पढ़कर समस्त संगत को सुनाता जो समस्त सिक्ख जगत के लिए अनिवार्य मान्य होता। इस पर सभी सिक्ख सरदार एक स्वर से कहते, श्री गुरू ग्रन्थ साहिब हमारे इष्टदेव हैं, वही हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, अतः यह गुरूमता उनके आदेश जानकर हम शपथ लेते हैं कि हम आपसी लड़ाईयां, ईर्ष्या, द्वेष दूर करेंगे और संगठित होकर खालसा पंथ की भलाई के लिए कार्य करेंगे।

सिक्खों की सांकेतिक भाषा

ज़क्रियाखान द्वारा सिक्खों पर लगाए सरकारी प्रतिबन्ध के कारण, सिक्ख जत्थे बनाकर नगरों से दूर ही रहने लगे परन्तु उन्हें रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुओं के लिए कभी कभार विवशता में नगरों में आना भी पड़ता था। ऐसे में वे अपनी वेश-भूषा मुग़ल फौजियों जैसी रखते थे। उन की बात-चीत का अर्थ भेदिये न जान पाये इस लिए उन्होंने अपनी भाषा को सांकेतिक रूप दे दिया। भाई मनी सिंह जी की शहीदी के पश्चात् इस सांकेतिक भाषा का सिक्खों में खूब विकास हुआ परन्तु सिक्खों की बाहरा सिसलों के अस्तित्व में आ जाने से धीरे-धीरे इस सांकेतिक भाषा की आवश्यकता समाप्त हो गई। अतः सिक्ख सैनिक इसे भूलने लग गये परन्तु निहंग सिंहों में अभी भी कुछ एक शब्द प्रचलन में हैं, जो आज भी 'खालसे के बोले' के नाम से प्रसिद्ध हैं और इन शब्दों का बहुत आदर से प्रयोग होता चला आ रहा है। उदाहरण के लिए जैसे-

उजागरी	=	दीपक अथवा लालटैन
अकलदान	=	सोटा या डंडा
अकाशपरी	=	बकरी
अकासी दीपक	=	सूर्य अथवा चन्द्रमा
अथक सवारी	=	जूता
अडंग बडिंग होना	=	लेटना अथवा सो जाना
आहू लुहाने	=	व्यक्ति को टुकड़े करके हत्या करनी
आकड़ भंन	=	बुखार से रोगग्रस्त होना

आनंदपूर्ण	=	भोजन करने उपरान्त तृप्त होना
आकी होना	=	जेल में कैद होना
अंगीठा	=	चिता, चिखा
अंधा	=	देशद्रोही अथवा मूर्ति पूजक
अमृत बेला	=	प्रातःकाल, सूर्य उदय से पूर्व का समय
इकटंगी बटेरा	=	बैंगन
सज जाना	=	तैयार होना
सदा गुलाब	=	कीकर, बबूल
सब्ज पुलाव	=	साग
शब्ज मन्दिर	=	वृक्ष के नीचे निवास स्थल
समुन्द्र	=	दूध
सरब रस	=	नमक, लून
सवाया	=	थोड़ा, कम
सवा लाख	=	एक
सवा लाख फौज	=	एक सैनिक योद्धा (सिक्ख)
स्योगी	=	हरा छोलिया
साकत	=	गुरू से बेमुख व्यक्ति (पतित)
सिंहनी	=	अमृतधारी स्त्री, महिला
सिर गुम	=	सिक्ख घराने का केश रहित व्यक्ति
सिर घसा	=	अन्य समुदाय के व्यक्ति
सिर जोड़	=	मुड
सुजाखा	=	ज्ञानी व्यक्ति
सुन्दरी	=	झाड़ू
सूबेदार	=	सफाई कर्मचारी
सुरमा	=	अंधा
सेव	=	बेर
श्री साहिब	=	तलवार
हरन होना	=	युद्ध नीति अनुसार भाग जाना
हरा करना	=	किसी वस्तु को प्रयोग के लिए तैयार करना
हीरा	=	सफेद केश अथवा बाल
होला–महल्ला	=	दो सैनिक टुकड़ियों द्वारा युद्ध अभ्यास करना अथवा आपस में नकली युद्ध करना

कच्चा पिल्ला	=	सिक्ख रहित मर्यादा को ठीक से पालन न करने वाला व्यक्ति
कट्टा	=	हाथी
कड़का	=	भूखा
काज़ी	=	मुर्गा
काना	=	तुर्क, मुस्लिम
कुट्ठा	=	हल्ला माँस मुसलमानों द्वारा धार्मिक कलाम पढ़ कर काटा गया जीव
कुणका	=	प्रसाद का अंशमात्र
कुत्तबद्दीन	=	कुत्ता
कुड़ीमार	=	कन्या का वध करने वाला
केसर	=	हल्दी
कोतवाल	=	चाकू
खस्सी फौज	=	महिलाओं का दल
खजूर	=	कंदमूल फल
खार समुन्द्र	=	लस्सी
खण्ड	=	राख, भस्म
गहरा गफा	=	युद्ध में से प्राप्त धन
गधी चुंणी	=	तम्बाकू सेवन करना
गफफे लगाउणें	=	स्वादिष्ट भोजन करना
गढ़ तोड़ना	=	विजय प्राप्त करनी
गुद्दड़	=	दूध की मलाई
गुप्ता	=	गूंगा
गुरमता सोधना	=	विचार गोष्टि द्वारा निर्णय करना
घल्लूघारा	=	भयंकर युद्ध में विनाश का समय
घाण होना	=	जानी नुक्सान होना
घाला–माला	=	उचित निर्णय के बिना क्षमा करना
घोड़ा दौड़वाना	=	मैथुन (भोग) करना
चढ़दी कला	=	उन्नति करना उत्साह अथवा उमंग का समय
चढ़ाई करना	=	प्राण त्याग देने
चूना	=	आटा

चोबारे चढ़िया	=	बोला, बहिरा
छिल्लड़	=	चाँदी के सिक्के अथवा धन
जहाज़	=	बैलगाड़ी
जहाज़ चढ़ना	=	अमृत धारण करना
जगत जूठ	=	तम्बाकू
जल तोरी	=	मछली
जँगल जाना	=	शौचालय जाना
ठीकरा	=	शव
तनरवाह लगानी	=	धार्मिक दंड देना
थानेदार	=	गधा
दमड़ा	=	सिक्का (धन राशि)
देग तैयार	=	लंगर तैयार
निशान साहिब	=	सिरव धार्मिक झंडा, ध्वज (केसरी)
प्रसादा	=	रोटी
पंचामृत	=	कड़ाह प्रसाद
पंच स्नान	=	हाथ मुँह धोना
पंमा	=	ब्राह्मण
बादाम	=	चने
महाप्रसाद	=	झटका माँस (किसी जीव को अचनचेत एक वार से मार गिराए का पक्का हुआ माँस)
रूपा	=	प्याज़
लरवनेत्रा	=	काना (एक आँरव वाला व्यक्ति)
लड़की	=	लाल मिर्ची
लंगर मस्ताना	=	अनाज की कमी के कारण भोजन न तैयार होना
वहीर	=	सिक्रव सैनिकों के परिवार

भाई काहन सिंहनाभा जी द्वारा रचित महान कोष में 'सिंहों के बोले' अर्थात सांकेतिक शब्द की एक विस्तृत सूची है, जिसे यहाँ नमूने के रूप में दिया गया है।

---------- ------------